रामाश्रम सत्संग की

साधन पद्धति

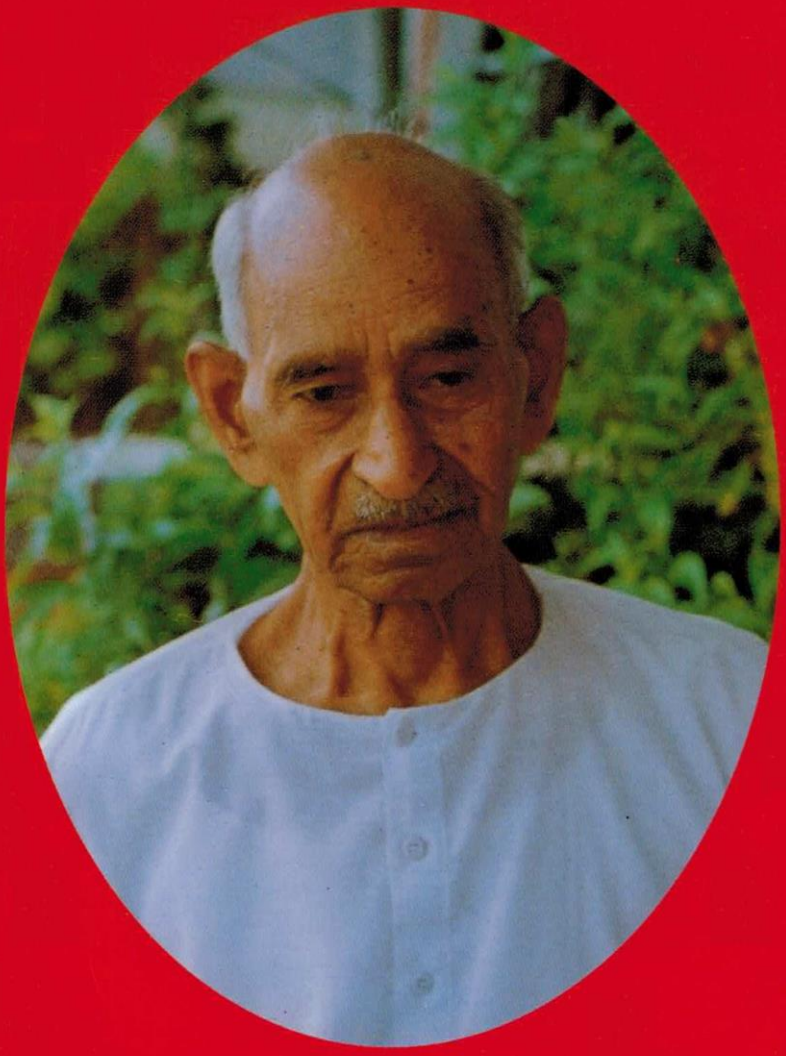

डॉ. हरनारायण सक्सैना

रामाश्रम सत्संग की

साधन पद्धति

डॉ॰ हरनारायण सक्सैना

Edition: 19L13

https://harnarayan-saxena.com/books%2C-video-and-audio

रामाश्रम सत्संग के संस्थापक

परम पूज्य समर्थ सत गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज, फतेहगढ़

प्रकाशकीय अनुक्रम

रामाश्रम भारती सोसाइटी, फतेहगढ़ की ओर से

दिनेश कुमार सक्सेना
पौत्र – संत सद्गुरु श्रीमन् महात्मा रामचन्द्रजी महाराज
'लाला जी निलयम'
45, महात्मा श्री रामचन्द्र जी मार्ग,
फतेहगढ़ (उ.प्र.) पिन 209601
✆ (05692) 36463
35506

द्वितीय संस्करण का अग्रलेख

इस महत्वपूर्ण प्रकाशन से साधनाक्षेत्र की जो सेवा संभव हो सकी है, उसकी पृष्ठभूमि में इस कृति के यशस्वी साधक श्रद्धेय डा. हरनारायण जी की दीर्घ साधना के अपने अनुभव एवं प्रयोग हैं, जिनको निष्ठा और सच्चाई से आत्मसात करके प्रस्तुत करने का शुभ संकल्प, परमपिता परमात्मा सद्गुरुदेव की सेवा भावना से, उनके मन में आया। इस प्रकार के प्रकाशन की निरन्तर मांग बनी हुई थी तथा साधकों के लिए आंतरिक - साधना के साथ बाह्य रूप में कुछ करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। विश्व भी कर्मकाण्ड के परिवेश में सांस्कारिक धर्म और संप्रदायों की परंपरा में ब्रह्मज्ञान की कर्मकाण्डरहित साधना को भी कर्मकाण्ड का आश्रय लेना अनिवार्य था, इस प्रकार की सोच किंचित भ्रान्तिपूर्ण ही होगी। यह अवश्य है कि साधकों की आंतरिक - साधना की तात्परता, निरंतरता एवं स्थायित्व के लिए इस प्रकार की एक व्यवस्था अपेक्षित रही, विशेषकर ऐसे साधकों के लिए जो स्थूल-प्रवृत्ति एवं कर्मकाण्डीय हठधर्मिता से हट कर इस विद्या के लिए उत्सुक हुए हैं। अतः जो व्यवस्था प्रस्तुत की गयी है वह किसी कर्मकाण्ड की श्रेणी में नहीं आती, उसमें कर्मकाण्ड की कट्टरता एवं कठोरता नहीं है, मात्र सुझाव एवं किंचित् संवेदनमात्र है जिनसे इस साधना की मुख्य अपेक्षा, 'प्रेम' की निरंतरता बनी रहे। ब्रह्मज्ञान, प्रेममार्ग की साधना है और जितना प्रेम जाग्रत होगा, उतनी ही सिद्धि सुलभ होगी।

श्रद्धेय डा० साहब की लगभग 70 वर्षों की साधना है और जिन्हे उनके दर्शन का सौभाग्य मिला है, वे प्रथम भेंट में ही उनके विह्वल प्रेमावतार स्वरूप से गद्गद हुए बिना नहीं रहे हैं। परम श्रद्धेय श्री श्री लाला जी महाराज एवं श्री श्री चच्चा जी महाराज के अंतरंग स्वजनों की स्थिति में आदरणीय डाक्टर साहब ने जिस दिव्य प्रेम का प्रसाद प्राप्त किया है, उसे वह जी खोल कर बाँटते रहते हैं।

ब्रह्मविद्या की किस ऊँचाई तक उनकी गति है और कितने समर्थ एवं सशक्त रूप में वह सत्संगी-अभ्यासियों की सहायता करते हैं और कितने आध्यात्मिक फ़ैज़ की वर्षा करते हैं, यह अनुभवी साधकों के गुह्य रहस्य हैं। प्रस्तुत पुस्तक निश्चय ही साधकों के लिए उनके आशीर्वाद के रूप में सहायक बन कर उनकी साधना को गति देगी, जिससे उनकी आध्यात्मिक उन्नति अल्पकाल में ही संभव हो जाएगी। ऐसा मेरा विश्वास है।

इस पुस्तक के मुद्रण में चि० योगेश चतुर्वेदी (जयपुर (राजस्थान) के) तथा उनकी पत्नी सौ० रजनी का उल्लेखनीय योग रहा है। दोनों को परम श्रद्धेय डाक्टर साहब तथा परमपिता परमात्मा श्री श्री लाला जी महाराज के आशीर्वाद प्राप्त हों, यह हमारी कामना है।

मालिक की सतत् शुभेच्छा एवं
अनेकानेक आशीर्वादों सहित

— दिनेश कुमार

फतेहगढ़ (उ०प्र०)
28 अक्तूबर 1999 (ई०)

प्रस्तावना

फतेहगढ़ निवासी परम सन्त महात्मा मुंशी रामचन्द्र जी (उर्फ लाला जी) महाराज द्वारा प्रचारित, प्रसारित अध्यात्म से मेरे जीवन को जो अप्रत्याशित उभार आया, वह अवर्णनीय है। साधारणतया नवयुवक, अपने स्वेच्छाचारी स्वभाव के कारण, स्वच्छन्द, अनियंत्रित ही रहना चाहते हैं- किसी प्रकार का बंधन, नियंत्रण आदि उन्हें सहन नहीं होता, परन्तु इन महात्मा के सम्पर्क में आने वाले युवक ऐसे आकर्षित, प्रभावित हुए कि अन्ततः उन्हीं के होकर रह गये। सौभाग्य से उन्हीं भाग्यशाली व्यक्तियों में उन्हीं की दया कृपा से मेरी भी गणना हो गई।

आपकी अध्यात्म पद्धति इतनी सरल परन्तु प्रभावशाली है कि सामान्य स्तर का व्यक्ति भी इसका अनुसरण करके अध्यात्म से परिपूर्ण होकर, उच्चतर जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

इस साधन पद्धति के विषय में समय-समय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए उपदेश तो अवश्य मिलते हैं, परन्तु आरम्भ से अन्त तक पूर्णरूप से मार्गदर्शक बने, ऐसा साहित्य नहीं मिलता। इस विषय में मैंने कुछ लिखने का प्रयास किया है, परन्तु इसमें मुझे कितनी सफलता मिली यह कहना कठिन है। सच तो यह है कि अध्यात्म कार्य का पूरा-पूरा वर्णन हो नहीं सकता। यही कारण रहा होगा कि इस कार्य का जितना भी साहित्य मिलता है, वह सब केवल सांकेतिक है, अन्यथा विद्वान लेखकों की तो किसी समय में भी कमी नहीं रही। लगभग छः मास के परिश्रम से यह छोटी सी पुस्तिका तैयार हो सकी। यह पुस्तिका पहली बार छप कर परम सन्त महात्मा ठाकुर रामसिंह जी (जयपुर) की जन्म शताब्दी 3-9-98 के पावन पर्व पर उनकी समाधि पर ही प्रकाशित कर दी गई।

यह प्रस्तावना अब लिखी जाकर द्वितीय-संस्करण में जोड़ी जा रही है। सारी ही कृतियों में, विशेषकर मुझ जैसे कच्चे व्यक्ति के द्वारा, त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है। अतः स्वाभाविक मानवीय त्रुटियाँ इसमें भी हैं। विवेकी पाठकों से विनम्र प्रार्थना है कि इसमें जो भी त्रुटियाँ, विसंगतियाँ, जो भी उन्हें दृष्टिगोचर हों उनसे मुझे अवगत कराने की कृपा करें, जिससे आगामी संस्करण में उन्हें दूर किया जा सके। इस प्रकार के सुझाव देने के लिये मैं विनीत भाव से आभार मानूँगा।

पुस्तिका के मूल लेखन में, संशोधन, छपाई, वितरण आदि इन सभी कार्यों में हमारे मित्र जयपुर निवासी श्रीमान योगेश चतुर्वेदी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रजनी चतुर्वेदी का विशेष योगदान रहा है। चि. महात्मा दिनेश कुमार जी (फतेहगढ़) ने इस कृति के लिए अत्यंत उपयोगी सुझाव देकर इसका आदर बहुत बढ़ाया है। इन सबका मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

दिनांक : 1 जनवरी, 2000 डॉ. हरनारायण सक्सैना

प्राक्कथन

सद्गुरु जीवन वृत्तान्त

परिवार तथा संतान परिचय

परम संत सद्गुरु श्रीमान महात्मा श्री रामचन्द्र जी के विषय में उनके वरिष्ठ शिष्यों ने बहुत कुछ लिखा है जो हम सत्संगियों के लिये सरलता से उपलब्ध भी है । फिर भी इन महानात्मा के विषय में जो कुछ भी लिखा जावे कम ही है । इनकी महानता का अनुमान हम तुच्छ बुद्धि ठीक से लगा ही नहीं पाते ।

कायस्थ परिवार में सन्तान साधारणतः पिता को 'लाला' व माता 'जिज्जी' इस प्रकार संबोधित करने की पुरानी प्रथा है । अतः इन्हें सन्तान ने 'लाला' कहना आरम्भ किया और इस प्रकार आपको संबोधन आपके शिष्यों द्वारा (जो सन्तान से भिन्न नहीं होते) 'लालाजी ' कहना आरम्भ किया, यहाँ तक कि इतने बड़े सत्संग में भी आप 'लालाजी' के पवित्र नाम से संबोधित किये जाते हें । माता जी आपके बाद लगभग बारह वर्ष सत्संग का कार्य संभाले रही ।

उद्गम स्थान

आपके परिवार के गुरुजन भूमिग्राम प्रान्त मैनपुरी उ.प्र. के प्रतिष्ठित रईस जागीरदार थे, परन्तु सन् 1857 के गदर में पूरा ग्राम ही लूट लिया गया और बची हुई जमीन जायदाद भी कुछ बड़े मुक़दमे में हाथ से निकल गयी । श्रीमान लालाजी महाराज तथा उनके छोटे भ्राता परमसन्त महात्मा श्रीमान रघुवरदयाल जी (श्रीमान चच्चाजी) महाराज के जन्म के समय इनके पूज्य पिताजी पूज्यपाद श्रीमान हरबख्शराय साहब फर्रूखाबाद में चुंगी के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे । पुराना रईस घराना था - सब सुविधायें - नौकर चाकर, सवारी (घोड़ा-बग्गी) आदि सभी घर में था ।

परन्तु आपके पिता के पश्चात् किसी मुक़दमे में परिवार के हार जाने के कारण ये सब कुछ भी हाथ से निकल गया। माता-पिता का स्वर्गवास पहले ही हो चुका था - अब घर में गरीबी आ गई।

इसी समय में श्रीमान लालाजी महाराज ने अँग्रेज़ी मिडिल (आठवीं क्लास) की परीक्षा पास की। पिता के मित्र उस समय प्रान्त के कलेक्टर थे और परिवार की स्थिति को जानते थे। उन्होंने इन्हें अपने कार्यालय में नौकरी दे दी।

दोनों भ्राताओं के विवाह उनके पिताजी ने सभ्रान्त कुलों में पहले ही कर दिये थे। अब दोनों परिवारों के जीवन-यापन (गुजर-बसर) का प्रबंध भी हो गया। रईसी ठाठ-बाट छोड़कर अब दोनों परिवारों को किसी प्रकार निर्वाह (गुजारा) करने की सुविधा हो गई। फर्रूखाबाद नगर में एक छोटा सा मकान किराये पर लेकर उसी में दोनों परिवार रहने लगे।

मकान छोटा होने के कारण श्रीमान लालाजी महाराज ने पड़ोस में मुफ़्ती साहब के मदरसे में एक कोठरी किराये पर ले ली जिसमें आप अपनी पढ़ाई आदि काम किया करते और रहने लगे।

सौभाग्य से इसी मदरसे में पढ़ाने वाले एक अध्यापक, जिनका शुभ नाम श्रीमान परमसंत सद्गुरु महात्मा ज़नाब फ़ज़ल अहमद खां साहब था, भी रहते थे। ये सन्त 'नक्श बंदिया' सिलसिले के सर्वाधिकार प्राप्त परमसन्त थे । श्रीमान लालाजी महाराज पर उनकी दृष्टि उधर से निकलते हुए पड़ती रही और श्रीमान लालाजी महाराज के संस्कारी पुरुष होने के कारण उनका आकर्षण इनकी ओर बढ़ता गया। उधर निकलते हुए जब श्रीमान लालाजी महाराज उन्हें अदब के साथ सलाम करते, तो वे मन से आशीर्वाद देते। इस प्रकार प्रेमाकर्षण बढ़ता गया।

एक संध्या को जब वर्षा हो रही थी और श्रीमान लालाजी महाराज उनके निवास के सामने से बुरी तरह भीगे हुए निकले, तो आपको बड़ी दया आयी और बोले – "बरखुरदार, कपड़े बदलकर आओ - मैं अंगीठी गरम कर लेता हूँ। भीग गये हो थोड़ा शरीर को सेंक लो तो सर्दी निकल जाएगी।" कपड़े बदलकर जब आप वहाँ पहुँचे तो उन्होंने बड़े प्यार से अपने पास बिठलाया। आपको भी अंगीठी की गर्मी से

आराम मिला। संत की कृपा हुई और उनके प्रभाव से श्रीमान लालाजी महाराज को नींद सी आने लगी - आपने उन्हें अपने बिस्तर पर लेटाया और अपनी रजाई ओढ़ा दी।

श्रीमान लालाजी महाराज बतलाया करते थे कि मुझे एक घंटा से अधिक समय तक होश ही नहीं रहा और आपने उसी समय में, मेरी न जाने कितनी आध्यात्म मंजिले तय करा दीं। यह तो पहला बड़ा संपर्क था। फिर तो संपर्क बढ़ता ही गया और धीरे-धीरे हुजूर महाराज ने अपनी सारी आध्यात्मिक (दीनी) दौलत श्रीमान लालाजी महाराज को देकर धनाढ्य (मालामाल) कर दिया।

पारवार में आपके चार पुत्रियां और एक पुत्र थे। पुत्र महात्मा श्री जगमोहन नारायण जी दो से छोटे और दो से बड़े थे। श्रीमान लालाजी महाराज का परिवार आरम्भ से ही हुजूर महाराज के सम्पर्क में आ गया और इन सब पर उनकी कृपायें हुईं।

श्रीमान चच्चाजी महाराज का परिवार भी आरम्भ में आपके साथ रहा करता था। अतः उनके साथ-साथ श्रीमान चच्चाजी तथा उनका परिवार भी इन सन्त के सम्पर्क में आया और उनकी कृपा इन पर भी हुई। फिर बाद में यह परिवार गंगा पार अलीगढ़ तहसील में चला गया। आपके बड़े सुपुत्र श्रीमान महात्मा ब्रजमोहन लाल जी स्कूल की पढ़ाई के लिये फतेहगढ़ में श्रीमान लालाजी महाराज के पास ही रहे। परिवार में ये महात्मा जगमोहन नारायण से बड़े थे और श्रीमान लालाजी महाराज के पास रहकर इनकी पढ़ाई भी हाई स्कूल तक वहीं हुई। हुजूर महाराज की कृपा दृष्टि इन पर भी बहुत थी और इन्हें आध्यात्म विद्या भी खूब मिली। श्रीमान लालाजी महाराज के देहावसान के बाद आपने फतेहगढ़ पूजा का सारा कार्य भार संभाला। श्रीमान जगमोहन नारायण जी को लालाजी महाराज का आदेश (लिखित वसीयत) था कि इनकी (महात्मा ब्रजमोहन लालजी की) आज्ञा में रहें जो इन्होंने जीवन भर निभाया।

दुर्भाग्य से इन्हें (महात्मा जगमोहन नारायण को) भी अधिक आयु नहीं मिली और सन् 1944 में ही इनका देहावसान हो गया। परन्तु इन चौदह वर्षों में

आपने सत्संग का ठोस कार्य किया। श्रीमान लालाजी महाराज का लिखा सारा साहित्य एकत्रित किया और इसे नियमित रूप से धीरे-धीरे छपवाते रहने का भी आयोजन किया। कुछ उनके समय में छपा भी परन्तु उनके स्वास्थ्य सामान्य न होने के कारण अधिक प्रगति न हो सकी। आपके देहावसान के समय उनके बड़े सुपुत्र महात्मा अखिलेश कुमार शैशव अवस्था में (लगभग 2 वर्ष) के थे। महात्मा दिनेश कुमार का तो जन्म ही उनके देहावसान के पश्चात् हुआ।

सन् 1944 से लगभग 1960 तक जब तक महात्मा अखिलेश कुमार बड़े होकर श्रीमान लालाजी महाराज के साहित्य की संभाल करते, यह साहित्य श्रीमान बाबू अयोध्या नाथ, जो इनके फूफा थे और कुछ समय से वही फतेहगढ़ में परिवार के साथ रह रहे थे, की संभाल में रहा।

श्रीमान लालाजी महाराज अपने जीवनकाल में जो भी संत साहित्य की रचना करते उसे अपने किसी शिष्य को भेज देते थे। उनके आदेशानुसार वे शिष्य उसकी प्रतिलिपि रखकर अन्य शिष्य के पास भेजते और अन्त में वह लेख लौटकर श्रीमान के पास आता आर सभाल कर रख लिया जाता। यह लेख के भेजने-लौटने का कार्य नियमित रूप से होता रहता। ऐसा लगता है कि श्रीमान जी की बीमारी की अवस्था में कुछ ऐसे भी लेख रहे हों, जो शिष्यों के पास ही रह गये हों और उन्होंने फिर उन लेखों को लौटा ही न पाया हो। यह मेरा अनुमान है और इसका कारण यह हो सकता है कि श्रीमान जो लिखने में ऊंची योग्यता रखते थे उनके लेखों में कहीं-कहीं समन्वय नहीं मिलता। बीच के लेख जो लौटकर श्रीमान के पास आता, संभाल कर रख लिया जाता। बीच के लेख जो लौटकर नहीं पहुँचे - उनके पहुंचने से सारे साहित्य में सम्भवतः सम्पूर्णता अवश्य ही आ जानी चाहिए थी।

अपने परिवार की सन्तान को श्रीमान लालाजी महाराज ने परम संत सद्गुरु महात्मा ज़नाब अब्दुल गनी खां साहब से ही दीक्षित कराया। आप हुजूर ज़नाब रायपुर वासी सत्संग देव के गुरु भाई थे। सर्वश्री परम संत श्रीमान ब्रजमोहन लालजी, श्रीमान जगमोहन नारायण जी, श्रीमान राधामोहन लाल जी इत्यादि को उन्होंने (लालाजी महाराज ने) इन्हीं परमसंत से दीक्षित कराया। बाद में इन्हीं संत द्वारा महात्मा ज्योतीन्द्रमोहन, महात्मा नरेन्द्र मोहन (सुपुत्र महात्मा डॉ. कृष्णस्वरूप

साहब) आदि की भी दीक्षा इन्हीं के द्वारा हुई।

इस प्रकार लालाजी महाराज की दीक्षा दिये हुए अन्य वरिष्ठ शिष्य और भी थे जो आपके सम्पर्क में रहे। ये सभी इनके पास बराबर आते रहे और वे स्वयं भी उनके स्थानों पर जाते रहे। इनमें महात्मा डॉ॰ चतुर्भुज सहाय जी, महात्मा डॉ॰ श्रीकृष्ण लाल जी, महात्मा श्याम बिहारी लाल जी, महात्मा रामचंद्र जी (शहाजहांपुर), महात्मा डॉ॰ श्याम लाल जी, महात्मा श्रीमान सेवती प्रसाद जी, महात्मा ठा॰ रामसिंह जी - जयपुर, महात्मा पं॰ हीरालाल जी जोशी - रावटी (रतलाम), महात्मा प्रभुदयाल जी कानपुर, महात्मा भवानी शंकर जी - उरई, महात्मा शिवनारायण दास जी गांधी – कानपुर, इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने उनके आध्यात्म के प्रचार-प्रसार का कार्य किया। इन्हीं शिष्यों में एक इस दास (लेखक) का नाम भी जोड़ लीजिए जो सबमें कनिष्ठ रहा।

श्रीमान लालाजी महाराज के छोटे भ्राता श्रीमान चच्चाजी महाराज भी अपने आरम्भ के जीवन में Astt. Station Master हो गये और एक छोटे स्टेशन पर उनकी नियुक्ति हो गयी। इनके समय में एक अंग्रेज इंसपेक्टर (Inspector) आता था जिसे गालियां देने की आदत थी। एक बार उसने इन्हें भी गालियां सुनाई। सुनते-सुनते इनसे रहा नहीं गया। पहलवानी कुश्ती द्वारा गठा हुआ शरीर था। उस अंग्रेज अफसर को कमर पकड़कर जमीन पर पटक दिया और छाती पर चढ़ बैठे। स्टेशन के लोगों ने बीच बचाव किया। वह इन्सपेक्टर चुपचाप चला गया। इनके विरूद्ध कोई केस बनाता उसके पहले ही आप त्याग पत्र देकर घर आ गये। इसके बाद का आपका जीवन बड़ा संघर्ष मय रहा और बड़ी कठिनाई से बीता। गंगापार अलीगढ़ तहसील में आप एक संभ्रान्त वकील के पास लिखा-पढ़ी का कार्य करने लगे। ये वकील (श्रीमान महात्मा चिम्मन लालजी) भी श्रीमान लालाजी महाराज के साथ हुजूर महाराज के पास पहुंच चुके थे और पुराने सत्संगी थी। इन्होंने श्रीमान चच्चाजी महाराज की खूब खिंचाई की, परन्तु श्रीमान चच्चाजी महाराज सब सहन करते और आध्यात्म मार्ग पर शीघ्रता से अग्रसर होते रहे। श्रीमान लालाजी महाराज इनके कष्टों को देखकर दु:खी भी हुए और उन्होंने कृपा करके इनकी कठोरतम तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें सद्गुरु की पदवी वहीं अलीगढ़ में ही प्रदान कर दी।

इस बीच में श्रीमान चच्चाजी महाराज के सुपुत्र- श्रीमान महात्मा ब्रजमोहन लालजी, जो श्रीमान लालाजी महाराज के पास पढ़ रहे थे, उन्होंने 10वीं कक्षा पास की और उन्हें पुलिस आफिस कानपुर में नौकरी मिल गयी। फिर शीघ्र ही यह परिवार सहित सन् 1924 में कानपुर आकर खटिकाना कर्नलगंज में एक छोटा सा मकान किराये लेकर, बस गये। आपके द्वितीय-पुत्र महात्मा श्री राधामोहनलालजी भी, जो फतेहगढ़ में श्रीमान लालाजी महाराज के पास रहकर पढ़ रहे थे, 1925 में हाई स्कूल पास कर कानपुर आ गये। आपको भी तुरन्त ही जज साहब की कोर्ट में नौकरी मिल गयी।

अब परिवार का रहन सहन अच्छा हो गया और सभी परिवार के स्वजन आराम से रहने लगे। इनके तीसरे छोटे भ्राता महात्मा श्री जोतीन्द्र मोहन लालजी कानपुर में ही पढ़ने लगे।

श्रीमान लालाजी महाराज तथा श्रीमान चच्चाजी महाराज का स्नेह बहुत घनिष्टता का था। ये दोनों ही बिना एक-दूसरे को देखे अधिक समय तक रह नहीं सकते थे। अतः मास में एक बार या तो श्रीमान लालाजी महाराज कानपुर आते या श्रीमान चच्चाजी महाराज फतेहगढ़ जाते और अधिकतर सपरिवार जाते। मैं श्रीमान चच्चाजी महाराज के पास कानपुर में सन् 1925 में पहुंच गया था और पास रहता था और हर वर्ष फतेहगढ़ भण्डारे में तो इस परिवार के साथ ही जाता। इस प्रकार दोनों परिवारों के साथ मुझे भी इनके सामूहिक सत्संग में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनमें उरई फिर इलाहाबाद (महाकुम्भ 1928) के अवसर विशेष थे। फतेहगढ़ में भण्डारा होता उसके अनुरूप इन सामूहिक सत्संगों में भी अपार आध्यात्म की वर्षा होती और नये आगन्तुक भी सराबोर हुए बिना नहीं लौटते। मैं भी साथ ही रहता।

इस संत परिवार की वंशावली पुस्तक में दी गई है। वंशावली देखने से आपको ज्ञात होगा कि एक और परिवार भी इन दो परिवारों से जुड़ा रहा है। श्रीमान लालाजी महाराज के चाचा श्रीमान उल्फ़त राय के सुपुत्र महात्मा डॉ. कृष्णस्वरूपजी थे। आपके पिता तो भूमि ग्राम में ही अपने मकान में रहकर, अपने वंश के पैतृक जो कुछ बाग बगीचा बचा रह गया था उसकी देखरेख करते थे और

उनके सुपुत्र डॉ० कृष्णस्वरूपजी, लालाजी महाराज के साथ रहकर फतेहगढ़ में पढ़ते थे। इन्हीं दिनों श्रीमान लालाजी महाराज का सम्पर्क हुजूर महाराज से हुआ था। आप भी उनके सम्पर्क में आ गये और आपको भी हुजूर महाराज के द्वारा दीक्षा दे दी गई। सबसे छोटे होने के नाते आप हुजूर महाराज को विशेष प्रिय व लाडले थे ।

आगरा मेडिकल स्कूल (तब कॉलेज नहीं था) से डॉक्टरी पढ़कर आपने पहले तो पश्चिम रेल्वे (WR तब BBC&R) में PWI की नौकरी की। फिर वह छोड़ कर डॉक्टरी करने लगे। म०प्र० रावटी में, कुछ समय काम करके आप अजमेर आकर बस गये। कुछ समय बाद जयपुर के सत्संगी भ्राताओं के आग्रह पर आप भी जयपुर आकर बस गये और जीवन भर डॉक्टरी के अतिरिक्त आध्यात्म का प्रचार-प्रसार करते रहे।

इनका कार्य क्षेत्र पहले मालवा और फिर राजस्थान रहा। इन दोनों ही प्रान्तों में इनके अनुयायियों की संख्या बहुत बड़ी थी। राजस्थान में पहले तो प्रचार-प्रसार भाई साहब परमसंत ठा० रामसिंहजी के द्वारा चलता रहा फिर सन् 1934-35 में जब जयपुर में सत्संगियों के अनुरोध पर श्रीमान डॉ. साहब जयपुर आ कर बस गये तो सारा सत्संग समाज इन्हीं की ओर झुक गया। इनका राजस्थान तथा मालवा में किया हुआ कार्य बहुत उच्च श्रेणी का रहा। श्रीमान लालाजी महाराज इन्हें मालवा में (रावटी रतलाम आदि स्थानों पर) संभालते और सहायता करते रहे। रावटी के लिये तो कहा जाता है कि श्रीमान लालाजी महाराज की इतनी बड़ी कृपा हुई कि उसके वातावरण को ही आपने आध्यात्मिक शक्ति से भर दिया।

विस्तृत जानकारी इन तीनों परिवारों के विषय में अपनी पुस्तक 'यादें' व “नक्शबंदिया सिलसिले के बुज़ुर्गान व उनकी समाधियां” में प्रस्तुत कर चुका हूँ।

श्रीमान लालाजी महाराज के परिवार से मेरा कोई सीधा पारिवारिक संबंध नहीं था, परन्तु मेरे पूज्य भाईसाहब कानपुर निवासी, बाबू आनन्दस्वरूप जी जिनके द्वारा मैं श्रीमान चच्चाजी महाराज और फिर श्रीमान लालाजी महाराज की शरण में पहुंचा, उनका पारिवारिक संबंध था। श्रीमान लालाजी महाराज के

साथ-साथ श्रीमान मुंशी चिम्मनलालजी मुख्तार (Advocate) भी हुजूर महाराज के दरबार में पहुंचे थे। इन मुंशी चिम्मनलाल साहब की बहिन का विवाह तो महात्मा डॉ० कृष्णस्वरूप जी से हुआ था और बड़ी पुत्री का विवाह मेरे भाईसाहब श्री आनन्द स्वरूप से हुआ था। दूर का संबंध होते हुए भी मेरा आध्यात्म का संबंध इन श्रीमान डॉक्टर साहब के परिवार से घनिष्ठता का हो ही गया।

हमारी पूज्य गुरु माताजी (धर्म पत्नि महात्मा श्रीमान लालाजी महाराज) के भ्राता उ.प्र. के आबकारी (Excise) विभाग के निरीक्षक (Inspector) थे। इन्होंने अपनी पुत्री के लिये श्रीमान लालाजी महाराज से परामर्श मांगा तो श्रीमान लालाजी महाराज ने मेरा नाम बतला दिया। मुझे आपके पास आते लगभग दो वर्ष हो गये थे। भाग्यवश यही संबंध पक्का हुआ और फरवरी 1928 में विवाह सम्पन्न हो गया जिसमें श्रीमान लालाजी महाराज की प्रमुख भूमिका रही। वे विवाह के सभी आयोजनों (रस्मोरिवाज) में उपस्थित रहे और दिशा निर्देश करते रहे। इस प्रकार से मेरा पारिवारिक संबंध भी गुरु परिवार से हो गया।

इस संबंध से मेरी आध्यात्मिक प्रगति में कोई अन्तर नहीं आया और फिर मार्च 1928 में ही एक बार श्रीमान लालाजी महाराज के कानपुर पधारने पर पूज्य भाईसाहब परमसंत बाबू ब्रजमोहन लाल साहब ने मुझे भी दीक्षा के लिये उनके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया और आग्रह करके मेरी दीक्षा करा दी। श्रीमान लालाजी महाराज जी इन भाई साहब की बात मान लेते थे। इतनी इन संत पर उनकी कृपा थी।

श्रीमान लालाजी महाराज, श्रीमान चच्चाजी महाराज तथा श्रीमान छोटे चच्चाजी महाराज के विषय में मैंने अपनी जानकारी की ही बातें लिखी हैं। इनकी संतान के विषय में आप इनकी वंशावली देखें।

इन संतों के गुरुदेव हुजूर महाराज, इन सबसे इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने अपना सब कुछ ही इन्हें दे डाला। कहते हैं उनका यह भी आशीर्वाद था कि इनके वंश में हमारी यह नक्शबंदिया परम्परा सात पुश्तों तक चलेगी। इस समय इनकी चौथी पीढ़ी तो आ ही चुकी है और उनके सदस्य इस संत परम्परा में दीक्षित और

कार्यरत भी हैं । आप सब ने फतेहगढ़ भण्डारा, कानपुर भण्डारा व जयपुर, गाजियाबाद तथा सिकंदराबाद भण्डारा आदि में यह सब प्रत्यक्ष रूप से देखा भी है। आशीर्वादानुसार आगे की तीन पीढ़ियां कौन दूर हैं । हमारे आगे आने वाले संत परम्परा के सदस्य ही उसे भी यथार्थ होते हुए देखेंगे, मुझे ऐसा विश्वास है।

श्रीमान लालाजी महाराज, श्रीमान चच्चाजी महाराज (कानपुर) और श्रीमान छोटे चच्चाजी महाराज (जयपुर), ये तीनों ही सन्त, बड़े गुरुमहाराज अर्थात परम संत सद्गुरु मौलवी फ़ज़ल अहमद खां साहब से दीक्षित थे । दादा गुरु महाराज ने जब हमारे गुरु भगवान को पूर्ण करके अपना सारा आध्यात्मिक सत्संग उन्हें के दिया तो फिर सारा ही कार्य भार उन्हें संभला दिया तो फिर आपने एक प्रकार से सारा ही कार्य श्रीमान लालाजी महाराज के लिए छोड़ दिया। इस प्रकार श्रीमान चच्चाजी महाराज, छोटे चच्चाजी महाराज (जो गुरु महाराज के समय छोटे ही थे) इत्यादि उनके अन्य शिष्यों के पूर्ण करने का कार्य भी श्रीमान लालाजी महाराज द्वारा ही हुआ। बड़े गुरु महाराज तो निजधाम को पधार गए फिर उनके आदेशानुसार श्रीमान लालाजी महाराज ने समय पर इन दोनों को पूर्ण किया और गुरु पदवी प्रदान की।

गुरुदेव के गुरु चचा

हमारे दादा गुरु महाराज के गुरुदेव - हजरत जनाब खलीफ़ा जी साहब (उस सत्संग में इसी नाम से आपको याद किया जाता है) के एक शिष्य और भी थे जिनका शुभ नाम परमसंत सद्गुरु हाज़ी मौलवी अब्दुल गनी ख़ाँ साहब था। बचपन में आप अपने पिताजी के साथ फर्रुखाबाद में रहते थे। आप एक दिन बाहर चबूतरे पर पिताश्री के साथ बैठे थे कि हुजूर जनाब खलीफा साहब का वहां से निकलना हुआ। मुलाकात काफी पुरानी थी। आपने इनको (हुजूर जनाब अब्दुल गनी खां साहब जो उस समय छोटे ही थे) देखकर उनके पिताश्री से इनको मांग लिया। उन्होंने भी खुशी-खुशी दे दिया। आप इन्हें घर ले आए और माताजी के सामने पेश किया कि मैं तुम्हारा अब्दुल्ला (उनके पुत्र जिसका कुछ समय पहले ही देहान्त हुआ था) ले आया हूँ। उन्होंने इन्हें चिपटा लिया और फिर ये उनके पुत्रवत ही पले। खलीफा साहब का अंत समय भी शीघ्र आ गया और वे इनकी तालीम

(आध्यात्मिक शिक्षा) आदि का कार्य हमारे बड़े गुरु महाराज के सुपुर्द कर गए। अतः इनकी पूर्ति भी श्रीमान बड़े हुजूर महाराज ने ही की। इनका भी कार्यक्षेत्र (आध्यात्मिक) श्रीमान लालाजी महाराज से कुछ अलग नहीं रहा। ये चारों आध्यात्मिक परिवार भी आपस में खूब घुले मिले रहे। हम ऊपर कह आए हैं कि श्रीमान लालाजी महाराज ने अपनी तथा अपने दोनों छोटे भ्राताओं की संतानों को इन्हीं हुजूर जनाब मौलवी साहब से दीक्षित कराया। इस प्रकार वे ही परिवार के सभी भ्राताओं के दीक्षा गुरु रहे। हमारे गुरु महाराज के हृदय में आपके लिए बड़ा आदर था और बहुत दिनों तक आप दीक्षा न देकर जो भी नया व्यक्ति आता उसे हुजूर जनाब मौलवी साहब के सामने प्रस्तुत करते। फिर जब हुजूर मौलवी साहब ने आग्रह किया कि आप स्वयं दीक्षा क्यों नहीं दें, तब कहीं आपने दीक्षा देना प्रारम्भ किया। यह उनके प्रति हमारे गुरु भगवान का आदर भाव था। इस आदर के आदर्श को भी हमारे सत्संगी भ्राताओं को भली-भांति समझना चाहिए। आदर का यह उत्कृष्ट उदाहरण है जो हमारे पूज्य गुरुदेव द्वारा स्थापित किया गया।

कानपुर वाले श्रीमान चच्चाजी महाराज सद्गुरु की पदवी बहुत पहले ही श्रीमान लालाजी महाराज द्वारा पा चुके थे। आपने भी' यही आदर्श प्रस्तुत किया कि श्रीमान लालाजी महाराज के जीवनकाल में किसी को भी दीक्षा नहीं दी। दीक्षा का कार्य आपने श्रीमान लालाजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् ही प्रारम्भ किया। कुछ ऐसे उदाहरण भी देखने में आए हैं जिनमें दीक्षा का कार्य करने के लालायित वरिष्ठ सत्संगियों ने इस आदर्श आदर भाव को नहीं निभाया।

हमारे ये हुजूर जनाब मौलवी साहब हमारे इन तीनों भ्राताओं के परिवारों से इतने घुले मिले थे कि किसी प्रकार का कोई छुपाव नहीं था। यहां तक कि हिन्दू मुसलमान का भी अंतर दिखाई नहीं पड़ता था। यह सब मेरा देखा हुआ है। मेरा अनुमान है कि हमारे श्रीमान मौलवी साहब के परिवार का सम्पर्क मुस्लिम परिवारों से घनिष्टता का न होकर, इन तीनों परिवारों से अधिक था।

हुजूर महाराज द्वारा जो ठोस नींव इस कार्य की डाली गई वह अवश्य ही अप्रत्याशित थी। आपने अपने शिष्यों में केवल श्रीमान लालाजी महाराज को पूर्ण किया और सारा ही आध्यात्म का कार्य तथा अन्य महानुभावों को पूर्ण करने का

कार्य श्रीमान लालाजी महाराज के लिए छोड़ दिया। श्रीमान लालाजी महाराज के वरिष्ठ शिष्यों द्वारा इस विषय में पूरी-पूरी जानकारी दी भी गई है जो उपलब्ध भी है। वैसे अपनी जानकारी की बहुत सी घटनाएं मैंने 'यादें' में सविस्तार दी हैं। ●

1. रामाश्रम सत्संग की साधन पद्धति

रामाश्रम सत्संग के नाम से जाने जानी वाली साधन पद्धति भारतवर्ष में तथा इसके भारतीय साधकों द्वारा संसार के अन्य सभी देशों में फैली, ईश्वर-आराधना की प्रभावशाली पद्धति है । जिसको हम सबके लिए परम संत सदगुरु महात्मा श्रीमान श्री रामचन्द्र जी फतेहगढ़ निवासी (श्रीमान लाला जी महाराज) द्वारा प्रचारित-प्रसारित किया गया। विश्व के सभी देशों में फैली इस पद्धति के अनुयायियों की संख्या अगणनीय है।

मुझे इस पद्धति के अनुसार ध्यानादि का कार्य करते हुए सत्तर वर्ष से अधिक हो गए हैं। सन् 1925 में मैं इसमें आया और सन् 1928 में मुझे श्रीमान लाला जी द्वारा दीक्षा दी गई। इस समय श्रीमान लालाजी के अन्य वरिष्ठ शिष्यों द्वारा फैलाई इसकी अनेकानेक शाखाओं में लगभग सभी से मेरा परिचय तथा सम्पर्क रहा है और अब भी है । किसी भी शाखा में मुझे बहुत सारा साहित्य उपलब्ध होने के उपरान्त भी, ऐसी कोई लिखित अथवा अलिखित साधन पद्धति नहीं मिली, जिसके द्वारा आरम्भ से अन्त तक अवलम्बित होकर साधन की पराकाष्ठा को पहुँचा जा सके । श्रीमान लाला जी महाराज के वरिष्ठ शिष्यों ने नवागन्तुकों के लिये बहुत कुछ पूजा की विधि लिखी भी हैं परन्तु वह सब प्रारम्भिक अथवा सांकेतिक ही हैं। खोज करने पर इस विषय में जो कुछ भी मुझे श्रीमान लालाजी महाराज द्वारा अथवा उनके वरिष्ठ शिष्यों द्वारा दिया गया अथवा मिला है - वह मैंने संक्षेप में पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत किया है । इन सबके अतिरिक्त भी जो कुछ मुझसे बन पड़ा मैं आप सबकी जानकारी हेतु प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सच तो यह है कि ध्यान की क्रिया लिखकर (अर्थात शब्दों द्वारा बोलकर) समझाया जाना सम्भव भी नहीं है। ध्यान की क्रिया को शक्तिपात द्वारा कराकर ही

सरलता से अनुभव कराया जा सकता है। शब्दों द्वारा कुछ प्रारम्भिक बातें भले ही बतला दी जावें परन्तु ध्यान की पद्धति का वर्णन करना संभव नहीं है । पुराने सत्संगी होने के नाते मुझ से भी बहुधा यह प्रश्न पूछा जाता है, परन्तु मैं भी शब्दों द्वारा उनका सन्तोष नहीं कर पाता जैसा कि ऊपर लिख चुका हूँ। जितना भी लिखकर बताया जा सकता है। लालाजी महाराज ने तथा उनके वरिष्ठ शिष्यों ने लिखा भी है और मैं भी वही न्यूनाधिक सब फिर लिख रहा हूँ जिसके लिये मुझसे कई सत्संगियों ने (जिन्हें शिक्षा का कार्य दिया गया है) अनुरोध व आग्रह किया है परन्तु यह सब भी अपर्याप्त ही है।

श्रीमान लालाजी महाराज की पूजा पद्धति को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। (1) ध्यान (2) जाप।

आगे के पृष्ठों में अब हम दोनों भागों पर विचार करते हैं।

सर्व प्रथम तो हमें यह जान लेना चाहिए कि यह ध्यान करने की क्रिया सरल, साधारण होते हुए भी ऐसी जटिल है कि हम अपने स्वयं के प्रयास से इसको समझ सकें तथा इस पर चल सकें - सामान्यतः यह संभव नहीं है । इसमें हमें जिसका सहारा लेना आवश्यक होता है, उसी को हम ' गुरु ' कहते है। ●

2. ध्यान

ध्यान की क्रिया करना और कराना

ध्यान की क्रिया मन के द्वारा होती है, पर अंततः यह आत्मा में स्थिति करा देती है। मन की विचार शक्ति अधिक तीव्र है। हम जिसका भी ध्यान करते हैं हमारा मन उस व्यक्ति विशेष से एक प्रकार से जुड़ जाता है। वह वे विशेष व्यक्ति हमारे गुरुदेव ही होते हैं अथवा कोई अन्य जिनमें हम अपने गुरुदेव को ही देखते हैं। इस प्रकार जुड़ने पर ध्यान शक्ति की धारा का प्रवाह गुरुदेव की ओर से हमारी ओर आना तुरन्त ही आरम्भ हो जाता है, क्योंकि गुरुदेव उच्च विभव पर होते हैं व हम निम्न पर। इस आती हुई धारा प्रवाह शक्ति को हम सभी उपस्थित सत्संगीओं को बांटना आरम्भ कर देते हैं। हमें केवल ध्यान के द्वारा उस शक्ति को उपस्थित सज्जनों अथवा समूह पर डालते रहना रहता है। इस धारा को अपने दाहिनी ओर से बाईं ओर फिर अपनी ओर, इस प्रकार गोल चक्र के रूप में घुमाते रहना होता है। अपनी क्षमता, संस्कार तथा क्षमता के अनुसार सभी सत्संगी उसमें से अपना भाग, ले लेते हैं। इस प्रकार सबकी ध्यान क्रिया सम्यता होती है। मन शांत व निर्मल होने लगता है और जब मन अपने सहज स्वरूप (शांत व निर्मलता) में पहुंचता है तब ध्यान शक्ति के सघनता होते ही समाधि की अवस्था स्वतः ही बन जाती है और जितने समय ध्यान कराने वाला चाहे यह अवस्था बनी रहती है।

श्रीमान लालाजी महाराज के अनुसार अभ्यासी को सुखाःसन से गुरु के सम्मुख बैठकर गुरु की ओर से अपनी ओर शक्ति की एक अदृश्य धारा प्रवाह आ रहा है ऐसा ध्यान करना होता है। हृदय से हृदय को जोड़ना रहता है। ऐसा करने से शक्ति का धारा प्रवाह आना चालू हो जाता है। इसको ध्यान कराना या तवज्जोह देना कहा जाता है। ऐसा करने से अभ्यासी का मन एकाग्र हो जाता है और फिर वह आगे बढ़ता और समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। अभ्यास क्रिया का

संचालक जब तक जितनी देर चाहे इस स्थिति को बनाये रखता है और फिर समाप्त करते समय, कार्य बन्द करने का मुख से (वाणी से) संकेत दे देता है। जिससे उपस्थित अभ्यासी धीरे-धीरे समाधि की अवस्था से उतर कर सावधान होते हैं और आँखे खोल देते हैं और धीरे-धीरे सामान्य अवस्था में आ जाते हैं। यह सब हमारे सभी अभ्यासी रात दिन देखते और समझते हैं। प्राचीन तथा आधुनिक ध्यान पद्धतियों में यही भिन्नता है कि इसमें ध्यान स्वतः अभ्यासी को अपने प्रयत्न से नहीं वरन गुरु की सहायता (शक्तिपात) द्वारा होता है। नव आगन्तुक को आरम्भ में कभी-कभी इसे समझने में थोड़ी कठिनाई आती है। परन्तु थोड़ा आगे चलकर सारा अभ्यास समझ में आ जाता है।

ध्यान की क्रिया द्वारा सारे चक्रों का शोधन स्वतः ही होता चला जाता है। जिसमें निःसन्देह गुरु कृपा अनिवार्य रूप से सम्मिलित रहती है। सारी शक्ति ही हमें गुरुदेव से मिलती है। हमें (अभ्यासी को) गुरु से यह कृपा धार अथवा शक्ति मिलना जो भी कहिये - विशेष कृपा है जो हमारे पुरानी ध्यान पद्धति में नहीं मिलती। यह अन्तर आपको भली भांति समझ लेना चाहिए।

अभ्यास कराना - अधिकार

जो अभ्यासी प्रारम्भिक स्तरों को पार करके आगे बढ़ जाते हैं और उनमें पर्याप्त क्षमता आ जाती है, उन्हें अन्य अभ्यासियों को ध्यान कराने के लिए अधिकृत कर देते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ व्यक्ति इस स्तर से भी आगे बढ़ जाते हैं, जिन्हें हमारी भाषा में एक प्रकार से परिपक्व होना कहा जाता है। उन्हें अभ्यास कराने के अतिरिक्त नये व्यक्तियों को अभ्यास की क्रिया बतलाना तथा आरम्भ कराने का कार्य के लिये भी अधिकृत कर दिया जाता है।

हमें यह भली भांति समझ लेना चाहिए कि ध्यान पूजा आदि कराने की कोई शक्ति हम में नहीं है। परन्तु हमारे गुरु भगवान सब प्रकार से समर्थ हैं। हम जैसे ही अपने आपको उनसे जोड़ते हैं, उनकी ओर से शक्ति का स्रोत हमारी ओर धारा प्रवाह रूप में आना प्रारम्भ हो जाता है। हमारा कार्य इस धारा प्रवाह को उपस्थित सज्जनों को बांटना होता है। इसमें किसी प्रकार की कमी नहीं रहती।

संख्या में कितने ही व्यक्ति हों प्रायः सभी का ध्यान लग जाता है। हमारे सत्संगी भ्राता यह सब जानते हैं। फिर भी इसे स्पष्ट रूप से समझलें जिससे कि ध्यान कराने के कार्य में कोई त्रुटि न रहे।

गुरु भगवान से अपने आपको जोड़ने की सबसे सरल विधि यह है कि हम यह ध्यान बांधे कि हमारे स्थान पर हमारे गुरु भगवान विद्यमान हैं, हम नहीं हैं। वे हममें लय हो गये हैं और अब वे ही कार्यरत हैं। हमारा अस्तित्त्व उनमें खो गया है। अब जो कुछ हो रहा है उन्हीं के द्वारा हो रहा है। परन्तु ध्यान रहे कि यह कार्य वही कर सकता है जो इस कार्य के लिए अधिकृत (इजाजत प्राप्त) हो और अपने गुरु में लय स्थिति प्राप्त कर चुका हो। बिना अधिकार प्राप्त व्यक्ति को यह कार्य कदापि नहीं करना चाहिए अन्यथा वह अपने आपको और जिनको वह ध्यान करा रहा है दोनों का अहित कर बैठेगा।

श्रीमान लालाजी महाराज ने एक स्थान पर लिखा भी है कि उपरोक्त क्षमता न रखने वालों के लिए वैसा ही है, जैसा कि बचाने वाले अक्सर डूबने वाले के साथ डूब जाया करते हैं। शिक्षक कर्म एक उत्तरदायित्व (जिम्मेदारी) का काम है और जब तक शिक्षक को संस्कार खींचकर निकाल फैंकने की कला नहीं आती उसे यह कार्य नहीं करना चाहिए। अधिकृत करते समय भी इसका ध्यान रखना चाहिए। गुरु की बात और है, गुरु तो संस्कार खींचकर फैंक सकते हैं पर कभी-कभी फैंकते नहीं वरन् स्वयं भोग लेते हैं। लालाजी महाराज कहा करते थे कि हमारा कार्य तो भंगी व धोबी का है अर्थात सफाई करने का है। कभी कहते थे, "यह मनुष्य बहुत गंदा था, हजारों मन मैले की टोकरी हमारे ऊपर पटक गया।"

शब्द मार्ग

नये व्यक्ति को अभ्यास कराने से पहिले अपने सामने बिठाए और वक्षस्थल में बाईं ओर हृदय का स्थान (बाएं पिस्तान से करीब दो-ढाई इंच नीचे), पर हाथ रख कर हृदय में स्वतः होते हुए धड़कन (शब्द) की ओर उसका ध्यान आकृष्ट कर उसे ओउम्, राम, या अल्लाह का उच्चारण समझ कर सुनने के लिए बतलावें। यह 'शब्द मार्ग' कहलाता है। यह शब्द सुरत (Conscious - आत्मा) से

संयुक्त होकर उर्ध्व मार्ग पकड़ता है, अतः इसे 'सुरत शब्द' योग कहते हैं। शब्द का ध्यान करने वालों के लिए केवल ईश्वर (लालाजी) के फ़ैज़ में बैठकर हृदय पर होते स्पंदन को ओउम्, राम या अल्लाह के उच्चारण में सुनना है। बस इसी से ही मन की वृत्तियां शांत होने लग जाती हैं। फिर यह स्पंदन सुरत के साथ संयुक्त होकर ऊपर की ओर गति करके ब्रह्माण्ड के चक्रों (आज्ञा चक्र से ऊपर के) को पार करा देता है। जिन्होंने श्रीमान लालाजी महाराज के दर्शन नहीं किए हैं और दीक्षा ली है उन्हें प्रत्यक्ष में उपस्थित गुरु से ही लाभ हो सकता है। हम भगवान से सीधा सम्पर्क न करके गुरु के माध्यम से उनसे सम्पर्क करते हैं। सीधा सम्पर्क भी असाधारण स्थितियों में हो सकता है, पर यह सामान्य नहीं है, विशिष्ट है। अतः हमारे सत्संगियों को जो भी उनके गुरु ही उन का ध्यान करना चाहिए। उन्हीं से पूरा लाभ मिलेगा।

हमारे बुजुर्गों का एक तरीका यह है कि सुख आसन में बैठकर गुरु के ध्यान में यह ख्याल करना कि, "हे परमात्मा तेरी जात के सिवा कुछ नहीं है। न यह दुनिया है, न मैं, न जिस्म, बस सिर्फ तू है। इस ख्याल में निमग्र हो जाना है।" यह अभ्यास करने से सभी भेद प्रकट होने लगते हैं। ईशोपनिषद का यही सार है। अपने ख्याल से दोहरेपन को हटाना चाहिए। ज्यों ही यह दोहरापन गया कि अभ्यास उच्च कोटि का व पवित्र बन जाता है। अन्दर व बाहर दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता।

श्रीमान चच्चाजी महाराज के अनुसार मन को शक्तिशाली, ताकतवर बनाये रखने के लिए एक बहुत अच्छा तरीका यह है कि आँख और जिव्हा को काबू में रखे, व्यर्थ कहीं नजर न जाये, और कभी आवश्यकता से अधिक बातें न करे। इससे मन अपने सहज स्वरूप को जल्दी प्राप्त करता है। ध्यान रहे हमने ईश्वर को देखा नहीं है अतः हम उसका ध्यान नहीं कर सकते। गुरु को देखा है अतः गुरु रूप ही ईश्वर का रूप मानना चाहिए। जितने भी चित्र भगवान के नाम से बने मिलते हैं वे सभी कल्पित हैं। जैसा जिसने समझा बना दिया कोई भी दो अलग-अलग स्थानों पर छपे चित्र आपस में शक्ल-सूरत में एक-दूसरे से नहीं मिलते।

प्रकाश मार्ग

किसी व्यक्ति का संस्कार ऐसा भी होता है जो शब्द को सरलता से नहीं पकड़ पाता। ऐसे व्यक्ति को प्रकाश मार्ग से अभ्यास कराते हैं। इसमें नये व्यक्ति को अपने सामने से (सफद, श्वेत, शुभ्र) प्रकार की एक मोटी धारा गुरु की ओर से अपनी ओर आती हुई और शरीर में हृदय पर पड़कर सारे शरीर में फैलती और प्रकाशित करती हुई जान पड़े और उसमें वह लय हो रहा है, इस प्रकार ध्यान करना बतलाते हैं। ये दोनों विधियाँ नये आगन्तुक को ध्यान में ले जाने के लिए हैं। जब ध्यान लग जाता है तब सब एक ही बात हो जाती है। प्रकाश का ध्यान करने में कभी-कभी यह गलती हो जाती है कि जिज्ञासु बार-बार गुरुदेव के हृदय से प्रकाश खींचने में कभी-कभी सारा समय इसी खींचतान में समाप्त कर देते हैं। होना यह चाहिए कि एक बार प्रकाश की धार ली और उसमें लय होने का प्रयत्न किया और साथ ही स्वयं को भूलेने का भी प्रयत किया। इसी में लय (गर्क) होने का प्रयत्न करना चाहिए जो कुछ समय में संभव भी हो जाता है। यह प्रकाश की धारा आना चालू होने पर आती ही रहती है। जब तक लय अवस्था में बैठे, आना बन्द नहीं होती।

सहज समाधि

बुजुर्गों का कथन यह है कि पूजा में बैठते हीं हुजूरी का भाव जागृत हो जाना चाहिए। जैसे कोई बादशाह के पास जाता है तो द्वार पर पहुंचते ही उसकी बाह्य वृतियां गायब हो जाती हैं और बहुत अधीनता के साथ दरबार में उपस्थित होता है। इससे कहीं अधिक ईश्वर के सामने जो सारे संसार का मालिक है बादशाहों का भी बादशाह है, उपस्थित होते समय चित्त की ऐसी ही दशा होनी चाहिए। फिर यह कहना चाहिए "हे नाथ तू ही मेरा ध्येय है, तेरी इच्छा पूर्ण हो और तुझे छोड़ मैं और कुछ न चाहूँ।" ऐसा करने से मन स्थिर होकर निरन्तर ईश्वर के चरणों में लगा रहता है। जब भी अवसर मिले, चाहे दो मिनट का ही क्यों न हो, झट भीतर मुड़कर (रजू होकर) उपासना में लग जाना चाहिए। इस तरह अभ्यास से कभी सहज समाधि भंग नहीं होगी और दुनिया के सब काम सुन्दर रीति से पालन होते चले जायेंगे। ध्यान रहे कि कोई भी विरोधी विचार हृदय में न ठहरने पाये। आया नहीं कि गया। लहर जैसे आई वैसी वापिस गई। यही सहज समाधि है जो सहज में ही

लग जाए और सहज में ही लगी भी रहे। इसमें विचार आते ही नहीं हैं। हमारे सत्संगियों की ऐसी स्थिति भी कभी-कभी हो जाती है। यह स्थिति बहुत ऊँची है और स्वागत योग्य है। इसका अभ्यास हो जाए और स्थिति अपने वश में आ जाए तो बहुत ही अच्छा है।

ध्यान का समय

नियमित रूप से नित्य ध्यान करने का समय निश्चित होना चाहिए। लालाजी महाराज के अनुसार सुबह चार से छह बजे उपयुक्त हैं और सायंकाल 6 से 8 अर्थात संध्या- दिन-रात के मिलने का समय से एक घंटा पहले से एक घंटा बाद तक। कहा जाता है कि यह समय मालिक ने मिलने के लिए तय कर रखा है। वैसे तो वह हर समय उपलब्ध है ही, विशेषता यह है कि इस समय सारी सृष्टि (कुदरत) 'राम' नाम लेती है। बस साधक को वही सुनना है। इस समय कृपा की भी विशेष वर्षा होती है। पूजा का समय निश्चित होना तो इसलिए भी आवश्यक है कि उस समय जो सज्जन भी पूजा में भाग लेना चाहें, वे समय के अनुसार आ सकते हैं तथा उस समय जहाँ भी हो वहीं बैठकर विचार से सत्संग में भाग ले सकते हैं, सम्मिलित हो सकते हैं।

इस विषय में मेरा अनुभव यह है कि संध्या- अर्थात् दिन जाने और रात्रि आने का समय, ध्यान के लिए विशेष उपयुक्त होता है। हमारे देश में विशेषकर उत्तर भारत में यह संध्या, समय दिन-रात्रि के घटने-बढ़ने के साथ बदलता रहात है। लगभग 21 जून से संध्या का समय बहुत थोड़ा-थोड़ा कम होने लगता है, यहां तक कि दो घंटे तक सरक जाता है। इसी प्रकार 21 दिसम्बर से यह समय बढ़ने लगता है और दो घंटे तक बढ़ जाता है। इस प्रकार जयपुर में जून में संध्या 7 बजे के बाद होती है और दिसम्बर में 5 बजे के लगभग। पूजा ध्यान का उपयुक्त समय तो संध्या ही है अर्थात दिन व रात मिलने का समय। वैसे जो भी समय सुविधानुसार मिल सके - ध्यानादि करना चाहिए।

हमारे गुरुजनों ने यह भी बतलाया है कि अपने अकेले ध्यान का समय रात्रि के तीसरे पहर में भी हो सकता है अर्थात 1.00 बजे से आरम्भ हो सकता है।

यह समय ऐसा होता है कि सब सोते हैं और आपको किसी प्रकार के विघ्न की आशंका नहीं रहती। इसको अपना स्वभाव बना लें तो अच्छा है। परन्तु जो दिन भर व्यवसाय आदि में व्यस्त रहते हैं, उन्हें रात्रि में पूर्ण विश्राम की आवश्यकता होती है जिससे दिन के कार्य में निद्रा, थकावट आदि न सताये। अतः ऐसी स्थिति में चौथे पहर में ही उठना चाहिए, रात 1.00 बजे नहीं। अपने उत्तरदायित्व से निश्चिंत (सेवा निवृत) होने पर यह स्वभाव अवश्य बनाया जा सकता है।

श्रीमान चच्चाजी महाराज का कथन है कि रात्रि का समय विश्राम का नहीं होता, ईश्वर की याद का होता है। उस समय गुरुदेव शिष्यों को ध्यान शक्ति पहुंचाते हैं (तवज्जह देते हैं) रात्रि ही तालीम का समय है। जो ईश्वर (गुरु) के ध्यान बिना गहरी नींद में सोता है उसके पास से गुरुदेव की ध्यान की धारा (तवज्जह) आकर लौट जाती है। जो ईश्वर (गुरु) के ध्यान में विश्राम करता है, उसे वे ऊंची स्थिति पर ले जाते हैं। ध्यान में सोने की पहचान यह है कि उठने पर शरीर हल्का जान पड़ता है। जिनको शिक्षा कार्य दिया हुआ (तालीम की इजाजत) है उनकी गुरुदेव विशेष रूप से देखभाल (निगरानी) करते हैं। वे उनके सज्ञान बालक हैं। उन्हें विशेष सावधानी बर्तनी चाहिए।

विचार आना

विचार ज्यादा आना कुछ बुरा नहीं है। जैसे गंदी कोठरी में क्या पड़ा है, मालूम नहीं होता, जब प्रकाश वहाँ पहुंचा तो सब कूड़ा दिखाई देने लगा। विचार की फिल्म चलना सफाई की प्रक्रिया है। अतः विचारों को आने देना चाहिए। हमें केवल यही करना है कि उनके साथ न बह जावें। वे आते रहेंगे और स्वतः ही जाते रहेंगे - आप अपना काम करते रहिए। विचारों की फिल्म को चलने दीजिए। ध्यान करने से धीरे-धीरे मन शांत व निर्मल हो जाता है और तब अपने केन्द्र में स्थित होकर चुप बैठ जाता है और तभी साधना की पहली सीढ़ी शुरू होती है। महर्षि पातंजली ने 'चित्त वृति निरोध' के उपरान्त ही योग का प्रारम्भ होना लिखा है। श्रीमान चच्चाजी महाराज का कथन था कि वृत्तियों का निरोध ही नहीं वरन् स्वयं के आपे को ही गुरु को अर्पण कर देना चाहिए उसी से सब काम बन जाता है।

ध्यान के बाद

ध्यान बंद करने के बाद थोड़ी देर चुपचाप बैठना चाहिए। श्रीमान चच्चाजी महाराज कहते थे कि कृपा (फैज) की तेज वर्षा में जितना आनन्द नहीं आता, उतना ध्यान समाप्ति के बाद की मध्यम वर्षा की हल्की-हल्की बूंदों में आता है। ध्यान धीरे-धीरे तोड़ना एक कला है क्योंकि ध्यान के अंतिम क्षणों में ही असल तत्व उतरता है। आप फरमाते थे "पूजा में तो मूसलाधार वर्षा के समान आत्मधार उतरती है, आई और गई, बिरले ठौर ठहरती है। जब पूजा समाप्त हो चुकती है, मंद-मंद धार जो उठती है उससे सच्ची आत्मिक उन्नति होती है जो धीरे-धीरे जम जाती है और स्थिर रहती है। इससे आत्मिक पोषण होता है।"

फिर "ध्यान" का ध्यान दिनभर रहना चाहिए। उस हल्के नशे का आनन्द अप्रतिम है। 'याद' बनी रहनी चाहिए। 'ध्यान' से आचरण और व्यवहार शुद्ध नहीं हुआ तो सब प्रयत्न व्यर्थ ही गया समझिए। रोने के विषय में बुजुर्गगण फरमाते थे कि जो ईश्वर के नजदीक हृदय से नहीं रोता, प्रार्थना नहीं करता, उसका काम बनना कठिन है। कितनी ही पूजा क्यों न करे, विशेष लाभ नहीं होता। रोने से हृदय द्रवित तथा कोमल (मुलायम) होता है। जब तक सच्चा रोना नहीं आता हृदय की मलिनता नहीं जाती। क्षणभर के रोने में जो बात होती है वह बहुत दिनों की पूजा, भजन में नहीं होती।

कबीर हंसना दूर कर, रोने से कर प्रीत।
बिन रोए कैसे मिले, प्रेम पियारा मीत॥

आनन्द रस और अमानी भाव

बुजुर्गों का कथन है कि संतजनों के सत्संग से आत्मा का प्रकाश छन कर हृदय तथा मस्तिष्क (दिल-दिमाग) में समा जाता है और वहीं से प्रकाश नीचे उतरकर अंग-अंग में समा जाता है। साधक को इसकी खबर हो या न हो परन्तु गुप्त रीति से यह क्रिया निरन्तर होने लगती है। इसका फल यह होता है उसके हर काम में आत्मा की ज्योति झिलमिलाने लगती है। जो उसके वचनों को सुनता है उसे

आनन्दरस का स्वाद मिलता है व उसमें, ईश्वरीय तेज प्रकट होता है और उसका किया सब काम ईश्वर का किया हुआ भासता है । भक्तजन इस स्थिति को भी छोड़कर आगे जाते हैं और शुद्ध तत्व (जात) में मिलकर भी अपने को दास बनाये रखते हैं और अमानी भाव नहीं त्यागते।

नित्य कर्म

हमें अपनी स्वयं की नियमित पूजा नित्य कर्म में ध्यान का समय बढ़ाना चाहिए, जिसकी वैसे तो कोई सीमा नहीं होती, परन्तु हम गृहस्थ हैं और दूसरे काम (नौकरी व्यवसाय आदि) भी हमारे लिये आवश्यक होते हैं। उनमें विघ्न न पड़े अतः प्रातः की पूजा में एक घन्टा से अधिक ध्यान न करें। यह मेरा परामर्श है। स्वतः ही ध्यान लग जाय और आँख न खुले तो इसमें कोई दोष अथवा आपत्ति नहीं है। जो अवकाश प्राप्त हैं अथवा जिनके पास समय उपलब्ध है - उन्हें अवश्य सुविधानुसार बढ़ाना चाहिए और खूब बढाना चाहिए।

गुरु भगवान आध्यात्म की अन्तिम सीढ़ियों तक के जानकार होते हैं। राह की कठिनाईयों, रवड्डे, खाइयों आदि अन्य रुकावटों से बचाते हुए हमें आध्यात्म की अन्तिम स्थितियों तक ले जाने की क्षमता भी उन्हें भगवान नारायण द्वारा मिली हुई होती है। हमें अपने आपको उनकी शरण में पूर्णतया समर्पण करके निश्चिन्त हो जाना चाहिए और जैसे वे चलायें चलते रहना चाहिए। गुरु पर पूर्ण निर्भरता होने से सब काम सरल हो जाते हैं।

अध्यात्म की चढ़ाई

आध्यात्म की सीढ़ियों के विषय में सबसे पहिले परमसंत महात्मा कबीरदास जी का लेख मिलता है। इसके पहले का साहित्य इस विषय में जो कुछ भी रहा हो, क्रमबद्ध उपलब्ध नहीं है। इसके बाद तो कई सन्तों द्वारा इसकी पुष्टि की गई है। फिर भी ये सब संकेत रूप में ही हैं, किसी भी आगे की स्थिति को हम उस समय तक भली भांति नहीं समझ पाते जब तक उस स्थिति को प्राप्त न कर लें। अतः यह सारे ही लेखन प्रयत्न आदि अपूर्ण हैं।

प्रसाद की भेंट चढ़ाना

हमारे यहाँ इस प्रार्थना को 'फ़ातिहा पढ़ना' कहते हैं जो इस प्रकार है-

इसमें अरबी भाषा के शब्द थोड़े कठिन लगते हैं। मुझे इसमें कठिनाई लगी अत: मैंने इस प्रार्थना को अपने कार्य के लिए इस प्रकार बना लिया-

1. बिस्मिल्लाह उर-रहमान उर रहीम - 5 बार

2. दरूद शरीफ

3. (प्रार्थना)

"ए मेरे अल्लाह पाक और बरतर अल्लाह तू महज़ अपने फ़ज़्लो करम व बुर्जगान तरीका सिलसिला आलिया नक्श बंदिया मुज़द्द दिया मज़हरिया फज्लिया और खास तौर पर हमारे जनाब लालाजी साहब के तुफैल में इस प्रसाद को मंजूर फर्मा और इसमें अपनी ऐसी बरकत व इनायात भर दे कि जो भी इस प्रसाद को ग्रहण करे उसके दिलो-दिमाग में तेरी मुहब्बत और तेरी याद हमेशा के लिए कायम हो जाए। आमीन!" या रब्बुल आल्मीन - 5 बार पढ़ें

4. दरूद शरीफ - 5 बार

5. आमीन रब्ब-उल-आलमीन - 5 बार

इन सबको पढ़ते समय अपने गुरु भगवान का इस प्रकार ध्यान रखो कि उनसे हम प्रार्थना कर रहे हैं तथा वे हमारी प्रार्थना सुन रहे हैं। मेरे गुरु भगवान श्रीमन्त लालाजी महाराज रहे हैं अत: मैंने प्रार्थना व बाद के नोट में उन्हीं का नाम लिखा है। प्रसाद चढ़ाने वाले व्यक्ति के जो भी गुरु हो वे उनका ध्यान करें और प्रसाद भी उन्हीं के रूप में भगवान को मान कर अर्पण करें (चढ़ाएँ)।

शिक्षकों द्वारा सामूहिक ध्यान कराना

सामूहिक ध्यान में ध्यान की सभा का आकार छोटा भी होता है और बड़ा और बहुत बड़ा भी। ध्यान कराने वाले व्यक्ति को इस आकार के अनुसार ही अपना प्रयत्न इस प्रकार करना चाहिए कि शक्तिपात प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचे और उसे ध्यान केन्द्रित करने में तथा ध्यान की गहराई में उतरने में पूरी पूरी सहायता मिले। सभा के सारे व्यक्ति उसके सामने हो। ध्यान कराने वाले व्यक्ति को जिस पद्धति से ध्यान कराना उनके गुरुदेव द्वारा बतलाया गया है - उसी के अनुसार अपने आप को अपने गुरुदेव में लय करके शक्तिपात द्वारा ध्यानशक्ति का वितरण अपने दाहिनी ओर से आरम्भ करके सामने - फिर बाई ओर - फिर अपनी ओर इस प्रकार चक्र रूप में घुमाते रहना चाहिए। इस धारा प्रवाह में से प्रत्येक व्यक्ति अपने संस्कार और ग्राह्य क्षमता के अनुसार आध्यात्म शक्ति को लेता रहता है। साधारणतः थोड़े समय (5 मिनट) में ही ध्यान गहराई में उतरना प्रारम्भ हो जाता है और ध्यान की उच्च अवस्थायें प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होने लगती हैं।

बहुत बड़ा आकार सभा का हो और सभी अभ्यासी सामने न बैठे हों, कुछ दिखालाई भी न पड़ रहे हों, तो ऐसे में ध्यान कराने वाले को अपनी शक्ति के अनुसार ध्यान करने वाले प्रत्येक व्यक्ति तक शक्तिपात पहुंच सके इसका भी ध्यान रखना चाहिए और ऐसा संकल्प करके ध्यान कराना चाहिए कि गुरु शक्ति प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंच रही है।

हम निजी नित्य कर्म (रोज की पूजा) अपने समय, सुविधानुसार करते है। और उसके अनुसार कार्य करते हैं। कार्य में थोड़ी प्रगति होने पर कनिष्ट सत्संगियों को सहायता करने का भी कार्य बतला दिया जाता है। इसके लिए पहले पुराने अभ्यासियों के साथ बैठकर पूजा करना फिर नवागन्तुकों को अभ्यास बतलाना और अभ्यास (हमारा) परिपक्व होने पर समूह में सत्संगियों को अभ्यास कराने का उत्तरदायित्व भी दिया जाता है। इसके लिए क्षमता योग्यता भी हमें अपने गुरुजनों द्वारा साथ ही साथ प्रदान की जाती है।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं कि हम शक्ति का भण्डार अपने गुरु

भगवान को मान कर उनसे शक्ति लेकर उपस्थित सत्संगियों में बाँटते है। व्यक्तिगत रुप से ध्यान सम्मुख बैठा कर बतलाया अथवा करवाया जाता है। लेकिन सामूहिक ध्यान में जब ध्यान कराने वाले एक से अधिक और ध्यान करने वाले भी अनेक हो तो ध्यान कराने वाले पंक्तिबद्ध (कतार में) तथा उनके सम्मुख समूह में भी पंक्तिबद्ध (कतार में) ध्यानकर्ता को बैठना चाहिए। इनमें भी पुरुष महिलाए अलग-अलग बैठें। ध्यान प्रारम्भ होने पर कोई भी बाहर से घुसने का प्रयत्न न करे और जहाँ भी स्थान उपलब्ध हो वहीं बैठ जाए। ध्यान का प्रभाव वहाँ भी पहुँच जाएगा कोई कमी न रहेगी। यथा संभव निर्देशानुसार बैठाने के लिए एक अथवा अनेक व्यक्तियों को नियुक्त किया जा सकता है। ध्यान समाप्त होने पर प्रसाद वितरण अथवा प्रवचन आदि के दौरान भी आगे न घुसे। प्रसाद आपको जहाँ आप बैठे हैं वहीं मिल जाएगा, विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होगी, आवश्यकता है तो केवल धैर्य की।

भण्डारे जैसे बड़े आयोजनों के अवसर पर अनुशासन का विशेष ध्यान रखना चाहिए। ध्यान प्रवचन के समय आपस में बात न करना और प्रवचन आदि ध्यान से सुनना और हृदयंगम करना चाहिए। यदि कुछ पूछना हो तो एक कागज पर लिखकर अपना प्रश्न मंच तक अपना नाम पता लिख कर, पहुँचा देना चाहिए। उचित होगा ये नियम मोटे-मोटे अक्षरों में सभा भवन (पण्डाल) के बाहर व अन्दर लटका दिया जाएँ। फिर आवश्यकता समझें तो इन्हे सभा के आरम्भ होने से पहले सभासदों को सुनाया जा सकता है।

भण्डारों के अवसर पर बहुधा दूर-दूर देशों से भी सत्संगी आते हैं और उन सभी के रहने, सोने, शौच-स्थान, विश्राम, भोजन, चाय-नाश्ता आदि का प्रबन्ध भी बड़े स्तर पर किया जाता है। नवागन्तुकों को सभी सुविधाएँ उपलब्ध हो इसका प्रबन्ध यथा शक्ति किया ही जाता है परन्तु फिर भी आने वाले सत्संगी भाई अपने आपको मेहमान न समझें और यदि कोई असुविधा हो रही हो तो स्थानीय महानुभावों के सहयोग से प्रबन्ध करने का प्रयत्न (कोशिश) करें। इसको शिकायत का रूप न दें। आयोजकों को सूचित अवश्य करें जिससे आगे के लिए प्रबन्ध हो सके।

बड़ी सभा में एक से अधिक ध्यान कराने वाले अधिकार प्राप्त व्यक्ति भी

सम्मिलित होते हैं। ऐसे में उचित हैं कि वहाँ बैठे वरिष्ठ व्यक्ति ही ध्यान करायें और सब ध्यान में बैठ जायें। परन्तु जहाँ - एक से अधिक व्यक्ति कार्य कर रहे हों वहाँ वे एक दूसरे के पूरक हों - किसी प्रकार का विरोध अथवा खेंचतान न हो, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। फिर भी ध्यान समाप्त कराने का संकेत तो वरिष्ठ व्यक्ति द्वारा ही दिया जाना चाहिए।

सामूहिक ध्यान के लिये समय का भी निर्धारण होना चाहिए। जहाँ तक मैंने श्रीमान लालाजी महाराज व श्रीमान चच्चाजी महाराज के दरबार में देखा है कि पहिले ध्यान 2० मिनट से अधिक नहीं होता था। कुछ अभ्यासी इसके बाद भी आँखे खोलकर सामान्य नहीं होते और ध्यान ही करते रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति एक ओर बैठे ऐसा करते भी रहें तो इसमें कोई हानि नहीं है। बीच में बैठकर ऐसा करना उचित नहीं हैं। न ही सामूहिक ध्यान अधिक लम्बा होना चाहिए। ध्यान के बाद थोड़े समय स्थिर तथा चुपचाप बैठकर हल्की-हल्की प्रेम की वर्षा का आनन्द लेते रहने के विषय में ऊपर लिखा ही जा चुका है।

ध्यान की क्रिया में किसी प्रकार की ध्वनि (आवाज) न हो तो ध्यान को एकाग्र करना सरल होता है। ध्वनि से ध्यान उसकी ओर स्वतः ही आकर्षित हो जाता है और ध्यान में विघ्न उपस्थित हो जाता है। बहुधा सत्संगी अचेतन अवस्था में जाकर गले से घर्राटा लेने लगते हैं जिससे सारे उपस्थित सत्संगियों का ध्यान गड़बड़ा जाता है। ऐसे समय में उनके पास बैठा कोई भी सत्संगी उन्हें हिलाकर सावधान कर दें तो उचित होगा। यह भी देखा जाता है कि कुछ सत्संगी ध्यान के समय कोई पद गाने लग जाते हैं। मुझे याद है कि श्रीमान लालाजी महाराज के समय में केवल उनके तथा उनकी आज्ञा से श्रीमान चच्चाजी महाराज के अतिरिक्त कोई भी नहीं गाते थे। परन्तु जैसे ही ध्यान की अवस्था घनी हुई वे बन्द कर देते थे और पूरे ध्यान के समय किसी प्रकार की ध्वनि नहीं होती थी। यह ध्यान के लिए आवश्यक है ऐसा आप सभी मानेंगे। अतः बीच-बीच में गाना या बोलना उचित नहीं है। हम सत्संगियों को इसका ध्यान रखना चाहिए।

वृहद सामूहिक सत्संगों में देखा गया है कि पूजा समाप्त होते ही यदि भोजन का समय हो तो सभी भोजन के लिए दौड़ते है और रेलमपेल मचा देते हैं। ऐसा वे

ही लोग करते हैं जिन्होंने पूजा के स्वरूप को समझा नहीं है। यदि वे आधा घण्टे बाद भोजन कर लेंगे तो अनर्थ नहीं हो जायेगा। सत्संगी को तो आम जनता से भी अधिक शालीन, शांत, संतोषी और सभ्य होना चाहिए। भूख को सहन करना भी सत्संगी को अपना कर्तव्य समझ कर अन्य सतसंगियों को विशेष कर नयों को अवसर देना चाहिए।

पैर छूना

जहां तक पैर छूने का प्रश्न है, पैर सिर्फ हाथों से छूने चाहिए न कि ढोक लगाना या लेटकर साष्टांग दण्डवत करना। वैसे तो मानसिक प्रणाम ही सर्वश्रेष्ठ है और बुजुर्गों द्वारा अनुमोदित है। कुछ स्थानों पर ढोक (माथा टिकाना) लगाया जाता है। जो कि श्रृद्धा की दृष्टि से तो भले ही ठीक हो पर सुविधाजनक नहीं है। हाथों से पैर का छूना ही सरल और श्रेष्ठ है। इसी प्रकार चित्र की पूजा नहीं करना चाहिए। श्रीमान चच्चाजी महाराज के अनुसार जब तक आप गुरु की पूरी आज्ञा में नहीं हैं उनके चरण छूना गुरु की हँसी उड़ाना है। उनके अनुसार गुरु को तभी दण्डवत किया जा सकता है जबकि शिष्य के ख्याल में माया लेश मात्र भी न हो। न स्वयं, न गुरु, न ईश्वर कुछ भी न हो। ऐसी हालत में अगर गुरुदेव भी शिष्य के चरण छुयें तो भी शिष्य के मन में कोई विपरीत भाव न आये। हमें तो यह बड़ा कठिन लगता है।

हमारे श्रीमान लालाजी महाराज के सभी सत्संग बराबर हैं। उनमें कोई न अधिक है न कम, बल्कि सभी श्रेष्ठ हैं। दुःख की बात है कि श्रीमान लालाजी महाराज से सम्बद्ध कुछ शाखाओं में यह बताया जाता है कि उनके यहां ही सब कुछ (सारा अध्यात्म) है और अन्य शाखाओं अथवा शिष्यों के स्थान पर नहीं। यह क्षोभनीय है। कहीं यह भी बताया जाता है अन्य विशिष्ट स्थानों को सल्व (खाली) कर दिया गया है और हमारे यहां ही अध्यात्म प्रवाह रह गया है। यह सभी हास्यास्पद है। श्रीमान लालाजी महाराज से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि ऐसे महानुभावों को सद्बुद्धि प्रदान करें जिससे उनकी तथा उनकी फैलाई भ्राँतियाँ दूर हों।

बच्चे और ध्यान

मुझे याद है सन् 1926-27 में जालौन प्रांत में एक स्थान पर सामूहिक सत्संग में श्रीमान लालाजी महाराज, श्रीमान चच्चाजी महाराज, भाई साहब बृज मोहन लालजी आदि सभी पधारे हुए थे। संध्या का सामूहिक सत्संग हो चुका था। कमरे में भाई साहब बृज मोहन लाल जी बैठे कुछ गा रहे थे और ध्यान की मुद्रा घनिष्टता की बन रही थी। उसी समय हमारे वरिष्ट सत्संगी बाबू प्रभूदयाल जी का सुपुत्र गुरुदयाल (7-8 वर्ष) आकर एक ओर लेट गया और सो गया; उसे और कहीं लेटने का स्थान नहीं मिला था।

थोड़ी देर बाद जब भोजन करने के लिए बुलाया गया तो सभी सत्संगी उठे। देखा कि गुरुदयाल सो रहा है। उसे जगाया गया तो जागा ही नहीं-होश में नहीं था। श्रीमान लालाजी महाराज को सूचना दी तो वे स्वयं पधारे वहाँ बैठकर उसे सल्व किया। फिर कहा, 'इसे सोने दो प्रातः सामान्य उठेगा'।

बच्चों का हृदय निर्मल होता है। अध्यात्म की सूक्ष्म धारा को वे सरलता से ग्रहण करते हैं। परन्तु अल्पायु के कारण उनमें सहन-शक्ति कम होती है। अतः बेहोश हो जाते हैं। अतः बच्चों को पूजा में बैठने का निषेध किया जाता है। हमारे सत्संगियों को इसका ध्यान रखना चाहिए।

सत्संग के समय अपने साथ छोटे बच्चों को नहीं लाना चाहिए। स्त्रियों के साथ बच्चे आ ही जाते हैं वे उन्हें कहां छोड़कर आऐं। कभी-कभी स्त्रियाँ बच्चों को अपने पिता के साथ पूजा में भेज देती हैं। वे सब पूजा को नहीं समझेंगे। हमारी सामूहिक पूजा में भी ऐसा होता है। ऐसे में हम तो यह करते हैं कि थोड़ा सा ध्यान कराया और फिर बंद कर दिया। चुपचाप अवश्य बैठे रहे जिससे सभी समझें कि ध्यान हो रहा है और फिर समय पूरा होने पर ध्यान समाप्त होने का संकेत दे दिया।

कभी-कभी देखा गया है खूब जगह होते हुए भी हम अपने घुटने आदि से अन्य सत्संगी भाईयों को छू (स्पर्श कर) लेते हैं जो अनुचित है। ध्यान में हर व्यक्ति एक ऊर्जा का केन्द्र बन जाता है। छूने से ऊर्जा के निःसृत होने का भय रहता है।

अतः सावधानी से बैठना चाहिए।

सामूहिक पूजा में सावधान से बैठना और यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई आवाज न हो। वायु व गैस पास करने का अपराध तो बिल्कुल नहीं होना चाहिए। उबासियां आदि भी नहीं लेनी चाहिए।

प्रसाद अर्पण करते समय प्रसाद के पदार्थ को पूरा नहीं, थोड़ा भाग सामने का अवश्य खोल देना चाहिए - उस खुले भाग पर शक्तिपात करने से सारे प्रसाद पर प्रभाव पहुंच जाता है। हम सारा प्रसाद गुरुजनों को और उनके द्वारा भगवान को अर्पण करते हैं और वह स्वीकार होता है। इस क्रिया के समय भी ध्यान का ही वातावरण बनता है। अतः सभी को चुपचाप रहना व शक्तिपात को ग्रहण करना चाहिए। प्रसाद बहुत महंगा और विशिष्ट नहीं होना चाहिए। कानपुर में हमारे श्रीमान चच्चाजी महाराज तो गुड़ और भुने चने का ही प्रसाद पसन्द करते थे। ●

3. जाप

हम पहले बतला आये हैं कि ध्यान के साथ-साथ जाप का भी बड़ा महत्व है। जाप में किसी भी 'मंत्र' को रटना होता है। इसकी संख्या माला द्वारा अथवा अंगुलियों पर गिनकर (कभी बिना गिने भी) की जाती है। जिन्हें हर समय जाप करते रहने का अभ्यास (सौभाग्य से) बन जाता है उन्हें माला आदि से कोई आवश्यक (प्रयोजन) नहीं रहता। जाप सदा ही भगवान के किसी नाम का अथवा प्रार्थना का होता है। यह छोटा भी होता है और बड़ा भी। अथवा किसी भी भाषा में हो सकता है। हमारे गुरुजन इस्लाम धर्म को मानने वाले थे और उनके बतलाये हुए जाप अरबी फारसी भाषा में हैं। परन्तु हिन्दी संस्कृत के मंत्रों को महत्व भी कम नहीं है। ध्येय तो अपनी भावना बनाने तथा भगवान से प्रार्थना करने का है, वह किसी भाषा में हो वे सब समझ लेते हैं और स्वीकार कर लेते हैं। जाप के लिए संस्कृत का गायत्री मंत्र उच्च कोटि का है जिसमें भगवान नारायण से प्रार्थना है :-

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्
भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।

अर्थ: उस प्राण स्वरूप, दुःख नाशक, सुख स्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पाप नाशक, देव स्वरूप परमात्मा को हम अपनी अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

यदि हमारी बुद्धि सही रहती है तो हमसे कोई भी अनुचित कार्य न होगा। हमारे कई संत (श्रीमान लालाजी महाराज के शिष्य) इसके जाप का आदेश देते हैं।

दूसरा मंत्र 'ॐ शान्ति' है। इसके द्वारा हम भगवान से सारे समाज में, भूमंडल में, सबको शान्त करने की प्रार्थना करते हैं। जो उथल-पुथल विश्व में हो रही है जिससे अशांति फैलती है उसे शान्त करने की यह प्रार्थना है, जिससे

भगवान की सृष्टि में सारे ही प्राणी सुखी हों।

हमारे दादा गुरु महाराज ने सबसे अधिक आवश्यक "दरूदशरीफ़" का जाप बतलाया है, बड़ा चमत्कारिक मंत्र है। वह इस प्रकार है :-

अल्लाहुम्मा सल्लेअलह सैयदना मुहम्मदिन
मादनिल जूदे वलकरम व आलाही वसल्लम्

अर्थ: हे ईश्वर ! हमारे हजरत मुहम्मद साहब जो हमारे सरदार व पेशवा अव्वल हैं उन पर व उनके परिवार (शारीरिक तथा आध्यात्मिक) पर अपनी कृपा की वर्षा कर और उनके द्वारा हम सबका कल्याण हो।

दूसरा मंत्र - लाहौल बिला कुव्वतो इल्लाह विल्लाह,

अर्थ: शक्तिशाली केवल भगवान ही है।

इन मंत्रों का जाप संस्कारों का भुगतान करा देता है।

यदि हमारे किसी सत्संगी भ्राता को उत्सुकता हो तो स्वयं अपने गुरुजनों से सम्पर्क करके और भी जापों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। अलग-अलग साधनाओं के लिये जाप संस्कृत में और अरबी भाषा में हमारे गुरुजनों ने बतलाये हैं। आवश्यकतानुसार ये बतलाये और कराये जा सकते हैं। श्रीमान लालाजी महाराज के द्वारा भी इस विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। जिसको फतेहगढ़ से प्रकाशित 'कमाले इन्सानी' नामक पुस्तक में श्रीमान महात्मा अखिलेश कुमार (श्रीमान लालाजी महाराज के बड़े पौत्र जो अब से लगभग 24 वर्ष पहले इस संसार से विदा ले गये) द्वारा सन् 1973 में छपवाकर वितरित किया गया।

जाप हमारे मन को सदा भगवान की ओर लगाये रहने का एक पवित्र साधन और माध्यम (जरिया) है। हम अनावश्यक रूप से अपना बहुत-सा अमूल्य समय नष्ट करते हैं जिसका हमें ज्ञान नहीं भी है, और है भी। समय को सार्थक बनाने तथा पवित्रता को अपने में अधिकाधिक स्थान देने के लिये जाप सरल परन्तु

आवश्यक तथा प्रभावी साधन है। अपनी सुविधानुसार इन्हें अपने गुरु भगवान के परामर्श के अनुसार जीवन में प्रयोग करना चाहिये जिससे अमूल्य समय व्यर्थ में नष्ट होने से बचे तथा हममें पवित्रता तथा भगवत् प्रेम को अधिकाधिक स्थान मिले।

श्रीमान चच्चाजी महाराज का कथन है कि जो ईश्वर नाम आप ही आप हृदय से उच्चारण हो रहा है वह ठीक है। जो जिव्हा सें कहा जाता है वह आकाश से ऊपर नहीं जाता। जो जिव्हा और विचार दोनों से कहा जाता है वह प्रजापति तक पहुंचता है और जो आत्मा से निकलता है सीधे ईश्वर तक पहुंचता है। अपने नित्य के कार्यों में ईश्वर की याद बनाये रखने की आदत डाल लेनी चाहिए।

हमें कुछ जाप अपने समय को व्यर्थ जाने से बचाने के लिये अवश्य निश्चित करना चाहिए। ये इस प्रकार है :-

1. गायत्री मंत्र कम से कम एक माला (108 दाना + 1 मु.) इसके बाद प्रार्थना "हे भगवान्। हमारी बुद्धि को सही दिशा में संचालित कीजिये जिससे हमसे कोई बुरा (पाप) कर्म न होने पाये।"

2. 'ॐ शान्ति' की माला (108. दाना + 1 मु.) माला के अन्त में प्रार्थना-

"हे भगवान। हमारे गुरु भगवान की पवित्र आत्मा को परम शान्ति प्रदान कीजिये।"

'ॐ शान्ति' के एक माला तो अपने गुरु भगवान के लिये करें और एक माला अपने सिलसिले के जितने भी बुजुर्ग हुए हैं उनकी पवित्र आत्माओं की शांति के लिये करें। हो सके तो एक माला इनके, अतिरिक्त जितने भी संत परमसंत, इसे विश्व में, किसी भी जाति में, किसी भी देश में, किसी भी समय में हुए हों उन सबकी पवित्र आत्माओं की शान्ति के लिये करें। एक माला अपने परिवार के जितने भी बड़े बुजुर्ग (और छोटे भी) इस समय उपस्थित नहीं है, यहाँ (संसार) से जा चुके है उनकी आत्माओं की शान्ति के लिये करें। यह सब नित्यप्रति अपने नित्य कर्म के आवश्यक रूप में करें। इसके अतिरिक्त हमारे किसी भी मित्र या प्रियजन की मृत्यु पर कम से कम 25 माला उसकी आत्मा की शान्ति के लिये करें। इनके सबके

अतिरिक्त जहाँ भी आपको उचित लगे इस जाप का उपयोग करके आत्माओं को लाभ पहुँचायें । ये अतिरिक्त मालायें आवश्यकतानुसार की जा सकती हैं - नित्य कर्म (अर्थात प्रतिदिन) करने के लिए आवश्यक नहीं हैं ।

खत-ए-मुज़द्दिया

हमारे श्रीमान लालाजी महाराज, श्रीमान चच्चाजी महाराज (कानपुर) एक सेट सात मालाओं का इस प्रकार बतलाते थे । गुरुदेव के अनुसार इससे हमारी सांसारिक जीविका (रोजी) में कोई कमी नहीं होती है तथा समृद्धि (बरकत) होती है । इसे खत-ए-मुजद्दिया कहा जाता है : -

दरूद शरीफ	1	माला
लाहौल विला...	5	माला
दरूद शरीफ	1	माला
(कुल	7	माला)

सात माला करने के उपरान्त यह प्रार्थना करें "इसका पुण्य (सवाब) हजरत जनाब मुजहद साहब की रूह पुर फुतूह शरीफ को पहुंचे ।" यह हजरत हमारी आध्यात्म परम्परा में नं. 25 पर आते हैं । इनका पवित्र नाम है हजरत जनाब शेख अहमद फारूखी और इनकी समाधि (मजार शरीफ) सरहिन्द (अम्बाला व लुधियाना के बीच) में है । यह हम सबके लिए एक पवित्र व तीर्थ स्थान है । यह स्थान सिख सम्प्रदाय के प्रसिद्ध गुरुद्वारे फतेहगढ़ साहब के पास ही है । यह गुरुद्वारा भी पवित्र तथा दर्शनीय स्थान है । उसे शहीद गंज गुरूद्वारा भी कहते हैं । इसमें सिक्सों के गुरु गोविन्द सिंह के दो छोटे पुत्रों को मुगल बादशाह औरंगजेब द्वारा जीवित ही दीवार में चुनवा कर मार डाला था । उनका स्थान भी बना है ।

सिलसिले के अन्य बुजुर्गों के लिये भी दरूदशरीफ की मालाएँ की जा सकती है । इसमें विशेष ध्यान रखने की बात यह है कि जो मालाएँ हमने अपने नित्य कर्म में बांध लीं, उन्हें जीवन भर करते रहना है । फिर उनमें कमी नहीं करेंगे । अतः इस बंधन (जापों को) अपने ऊपर लागू करते समय इसका भी ध्यान रखें ।

इसके अतिरिक्त यदि हम विशेष व्यक्ति के लिये यदि कुछ जाप अथवा

किसी विशेष कार्य के लिये कोई जाप करते हैं तो जाप उस कार्य के पश्चात् छोड़ दिया जा सकता है। इसका उदाहरण है हमारे किसी प्रियजन की मृत्यु। हमें उस प्रियजन की आत्मा को शान्ति पहुंचाने के लिये (शव के पास बैठे अथवा साथ चलते हुए) "ॐ शान्ति" की माला जितनी हो सकें करनी चाहिये। विशेषकर जब हम शव यात्रा में जा रहे हों अथवा उसके घर शोक संवेदना के लिये जाते हों या बैठे हों। ऐसे समय में मृतक को परिवार के जनों के लिये तो 50-100 या अधिक माला करनी ही चाहिये। कई दिन तक भी करना चाहिये। ये आपके नित्य कर्म में सदा के लिये नहीं जुड़ेंगी।

अपने जीवनसंगी (स्त्रियों के लिये पति और पुरुषों के लिये पत्नि) के लिये एक माला "ॐ शान्ति" की (अथवा अधिक) उनके विछोह के समय से, जीवन भर करनी चाहिये। आप चाहें तो अन्य किसी स्वजन के लिये भी एक माला दैनिक जाप में बांध सकते हैं परन्तु फिर इसे छोड़ेगे नहीं- यह ध्यान रहे।

मेरा स्वयं का अनुभव यह रहा है कि जाप जो हम अपने दैनिक जीवन में बांधते हैं आरम्भ में सरल लगते हैं पर कुछ समय बाद वे ही भारी लगने लगते हैं। यह भी होता है कि थोड़ा ओर आगे चलकर जाप में अभ्यास हो जाने पर सरलता आ जाती है और समय कुछ कम लगने लगता है। इन सभी बातों का विचार हमें कर लेना चाहिये। जिससे हमारे स्वयं का निश्चित किया जाप चलता रहे उसमें कोई कठिनाई न आये।

नित्य का जाप

नित्यप्रति का जाप रोज निपटाना चाहिये उसे पूरा करके ही आप सोवें। यात्रा आदि के समय भी इसे करते रह सकते हैं। परन्तु फिर भी किन्हीं कारणों से इनमें से कभी-कभी कुछ रह जाते हैं और हम पूरा नहीं कर पाते। जहाँ तक हो सके हम ऐसी स्थिति न आने दें। यदि हमारे वश के बाहर कारणों से यह स्थिति आ जावे तो उस जाप को दूसरे दिन दैनिक जाप के साथ-साथ पूरा कर लें और इस अनियमितता के लिये गुरु भगवान से क्षमा याचना करें।

हम कभी भी कहीं जाते हों - रेल में, बस में, कार में, तांगे-रिक्षा में अथवा

पैदल चलते समय हमें कोई कार्य नहीं करना रहता और केवल निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचने की प्रतीक्षा करनी रहती है। ऐसे समय में हमें जाप करना चाहिये। जो भी जाप आप करते हों, उन्हें भी इस समय में निपटा सकते हैं अन्यथा उसके अतिरिक्त जाप करें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं, वरन् ध्येय समय को नष्ट होने से बचाना ही है।

जब आप सोने के लिये अपने बिस्तर पर जावें उस समय आपके बन्धन के जाप तो पूरे हो ही जाने चाहिये, इसका विशेष ध्यान रक्खें। सोने के समय अपने गुरु भगवान के ध्यान में और उनके लिये 'ॐ शान्ति' का जाप करें और गुरु भगवान के ध्यान में ही सोवें। ऐसा करने से निद्रा आ जाने पर सारी निद्रा का समय पूजा में ही व्यतीत हो जायेगा। इसी प्रकार रात्रि में आँख खुलने पर भी पुन: निद्रा आवे, उस समय को जाप में लगाना चाहिए। जागने पर तो जाप चालू हो ही जाना चाहिये। सोते समय जाप करने का विशेष ध्यान रखें। इसका स्वभाव बना लें। स्वभाव बन जाने पर धीरे-धीरे ऐसा हो जाना चाहिए कि आपकी नींद का सारा समय ही गुरु भगवान के ध्यान और जाप में लग जाये। ●

4. प्राणायाम

हम जो हर समय श्वास लेते और छोड़ते हैं उसी को प्राण कहा जाता है। इस प्राण का व्यायाम ही प्राणायाम है। हमारे शास्त्रों में इसकी बहुत महिमा गाई गयी है। स्वास्थ्य केलिए दीर्घायु प्राप्त करने केलिए भारत में योगीजन इसे करते थे और 100 वर्ष से ऊपर की आयु को सरलता से ही प्राप्त कर लेते थे। हमारे श्रीमान लालाजी महाराज ने लिखा है कि प्राणायाम बड़ा ही लाभप्रद अभ्यास है परन्तु पुस्तकों में पढ़कर इसे करना भय से खाली नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि श्वास को रोकने से शरीर में ऊर्जा उत्पन्न होती है और मन को एकाग्र करने में सहायता मिलती है। अतः सूक्ष्म रूप से इसको हमारे अभ्यास में लाने का संकेत भी श्रीमान लालाजी महाराज का मिलता है उनके बताये विधान को हम निम्न प्रकार वर्णन करते हैं :-

1. पहला रूप :

पूरक - श्वास को दाहिने आत्मा के स्थान [जो हृदय चक्र के समकक्ष (opposite) है] से उठावें और सिर के ऊपर ले जायें और कहते जायें "कुछ नहीं है (ला)"।

कुम्भक - ऊपर ले जाकर थोड़ा श्वास रोके और कहें "सिवाय (इल्लाह)"

रेचक - फिर श्वास के बाई ओर हृदय पर छोड़ और कहें - "ईश्वर के (इल्लिलाह)"

इस प्रकार यह मंत्र पूरा हुआ 'कुछ नहीं है सिवाय ईश्वर के '(ला इलाह इल्लिलाह)।

इस अभ्यास को 9 बार आरम्भ में करें व धीरे-धीरे बढ़ाकर 27 तक ले जायें। बस इससे अधिक न करें यह सब मन ही मन में कहें - आवाज के साथ नहीं।

2. दूसरा रूप :

चौमुखा जाप - सीधे सुखासन पर बैठकर सामने देखें। स्वांस को भरकर रोकें और आँखों से दाहिने कंधे की ओर देखकर मन ही मन कहें "या फत्ताहो" (फतेह या कामयाबी देने वाला)। आँखों को बाये कंधे की ओर घुमा दें और कहें "या रज्जाको" (रोजी देने वाला)। फिर ऊपर को देखें और कहें "या वहाबो" (सबका पालन करने वाला)। फिर नीचे को हृदय की तरफ देखें और कहें "या अल्लाह" (सारी सृष्टि का स्वामी)। यह एक चक्र हुआ इस प्रकार तीन चक्र (राउण्ड) करके हृदय पर स्वाँस छोड़ दें। यह गिनती में 1 हुआ। इस प्रकार आरम्भ में 9 बार करें फिर धीरे- धीरे संख्या 45 तक बढ़ायें, अधिक नहीं।

इस प्राणायाम की संख्या 45 का कुछ समय (1-2 वर्ष) में अभ्यास सरल हो जाएगा फिर इसे थोड़ा- थोड़ा बढ़ावें। यह वृद्धि तीन प्रकार हो सकती है -

1. इसकी संख्या बढ़ाना - यह आवश्यक नहीं है - यह संख्या 45 ही पर्याप्त है।

2. अलग-अलग तीन राउण्ड की वृद्धि - 3 से 5, फिर 7, फिर 9 बस अधिक नहीं।

3. इन 5 ,7 ,9 की वृद्धि भी धीरे-धीर ही करें। 3 से 5 फिर 7, फिर 9 इस प्रकार धीरे-धीरे 27 तक बढ़ा सकते हैं। इस वृद्धि का भार न मालूम पड़े। भार लगे तो वृद्धि रोक दें। इस वृद्धि को 45 की संख्या केबीच में इस प्रकार लगाएँ-

3 राउण्ड	21	20	19	18	17	16	15	13	11	9
5-7-9 राउण्ड	3	5	7	9	11	13	15	19	23	27
3 राउण्ड	21	20	19	18	17	16	15	13	11	9
	45	45	45	45	45	45	45	45	45	45

यह जो ऊपर की पद्धतियों में सुझाव दिए हैं इसे समझने के लिए पर्याप्त विस्तार से लिखा है फिर भी पाठकों को समझने में कोई कठिनाई हो सकती है। यदि ऐसा हो और सम्भव हो सके तो मुझसे सम्पर्क कर लें।

ये दो प्रकार के प्राणायाम सहज भाव से करें। किसी प्रकार की खींचतान या जबरदस्ती न करें व धीरे-धीरे ही गिनती को बढ़ावें। दोनों में से एक समय एक प्राणायाम ही करें - दोनों नहीं। एक ही का अभ्यास कुछ समय करते रहें अथवा दूसरा भी करें तो प्रातः एवं सायं दो समय अलग अलग ही करें। ●

5. प्रतिदिन का पूजा अभ्यास

जो भी सत्संग में सम्मिलित हों उन्हें नित-प्रतिदिन दोनों समय पूजा करना आवश्यक है। पूजा जाप से प्रारम्भ करनी चाहिए। ये 3 - मंत्र जाप के लिए बताये गए हैं :-

1. हे ईश्वर ! मेरे पापों को क्षमा कीजिए - (गुरुमंत्र)
2. हे ईश्वर ! मुझे अपनी (अर्थात ईश्वर की) इच्छा पर चलने की शक्ति दीजिए - (शक्तिमंत्र)
3. हे ईश्वर ! मुझे अपने गुरुदेव से सच्ची प्रीति दीजिए - (कीलक मंत्र)

मन को एकाग्र करके इन मंत्रों की एक-एक माला करें।

इसके पश्चात शजराशरीफ का पाठ करें। हर परमसन्त के नाम के शे ' र के पश्चात् दरूद शरीफ पढ़ते जायें। नं. 1, 10, 25, 32 के परमसन्तों के शे ' रों को 7 बार पढ़ें व श्रीमान लालाजी महाराज का (शे ' र) 21 बार पढ़ें।

इसके पश्चात् अपने गुरुदेव के नाम की शे'र को 21 बार पढ़कर समाप्त कर दें।

इसके पश्चात् चौमुखा जाप करें जैसा कि ऊपर बताया गया है। तत्पश्चात् बताई हुई रीति के अनुसार ध्यान करें। ●

6. ज़िक्र और फ़िक्र

ज़िक्र 'जाप' का फारसी नाम है और फ़िक्र 'ध्यान' का फरसी नाम है। इस विषय में हम इस लेख के आरम्भ में ही पूर्ण विवरण लिख आये हैं। श्रीमान लालाजी महारज ने दोनों को ही आवश्यक बताया है परन्तु ज़िक्र फ़िक्र से अधिक आवश्यक (ज्यादा जरूरी) बतलाया है। उन्होंने कमाले-इन्सानी में लिखा है कि "ज़िक्र को फ़िक्र पर मुकद्दम माना जाये"। कारण यह प्रतीत होता है कि जाप हम हर समय, अपने प्रयत्न से, करते रह सकते हैं पर ध्यान फ़िक्र के लिए कुछ परिस्थितियाँ आवश्यक होती हैं। 'जाप' स्वयं के प्रयत्न से हठपूर्वक भी किया जा सकता है। पर ध्यान के विषय में ऐसा नहीं है।

हमें अपना स्वभाव ही ऐसा बनाना चाहिए कि जिसमें हर समय (अथवा 24 घंटों में अधिक से अधिक समय) हमें अपने गुरुदेव का ध्यान रहे और उनकी याद बनी रहे। इसे चिन्तन भी कहते हैं। यह जाप से बहुत सरल हो जाता है। जाप याद का एक माध्यम बन जाता है। 'जाप' करते हुए 'ध्यान' बन जाना कि वे हममें है और वे ही हैं - हम नहीं हैं और जाप भी वे ही कर रहे हैं - हम नहीं। इस 'ध्यान' का सतत: (हर समय) बने रहना 'जाप' की 'ध्यान' में परिणिति है अर्थात जाप और ध्यान दोनों का मिश्रण है जो बहुत लाभदायक है। इस अभ्यास को जैसे भी हो बढ़ाते जाना और पक्के करते जाना चाहिए। यह अभ्यास बहुत ही लाभदायक है। हमारा प्रयत्न सच्चाई से होना चाहिए तब ही गुरु भगवान से सहायता मिलती है, जिससे हमें इस अभ्यास का बनाना और सततः बनाए रखना सरल हो जाता है। जाप (ज़िक्र) को 24 घंटे का अभ्यास बनाने का सदा प्रयत्न करना चाहिए। नींद में जाप का अभ्यास बना लेना अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि जाप करते हुए नींद आ जाने पर अपने आप स्वतः मानसिक क्रिया (Psychomotor) द्वारा जारी रहेगा फिर नींद टूटने पर गुरुदेव के ध्यान द्वारा जाप में वापस आया जा सकता है।

अब थोड़ा फ़िक्र (ध्यान) के विषय में भी विचार कर लें। वैसे तो हमें 24 घंटे ही गुरुदेव के ध्यान (ख्याल) में रहना चाहिए, परन्तु नियमित रूप से निर्धारित समय और निर्धारित स्थान पर ध्यान, भी अवश्य और नित्य करना चाहिए। मन को

एकाग्र करके अपने गुरु भगवान के विचार में लगाना तथा गुरुदेव में लय होना, यह एक विशेष आवश्यकता है। जब गुरु भगवान ही हम में विराज रहें हों तो उनके साथ भगवान की सारी शक्तियां भी वहीं उपस्थित हैं। इसके संदेह के लिए कोई स्थान नहीं है। इस विचार को आपके लिए इस प्रकार पकड़कर रखना आवश्यक है तथा पर्याप्त भी है। इसमें किसी भी क्षण अलगाव व गुरु भगवान से दूरी न होने पाए। उनके प्रेम की धारा के साथ ध्यान की सारी शक्तियां आपको उपलब्ध हैं और फिर आध्यात्म नियमों के अनुसार आप स्वतः ही ध्यान की सघनता और ऐसा करने से आप समाधि की अवस्थाओं में अग्रसर हो जायेंगे। गुरु भगवान को साथ रखने का प्रभाव यह होगा कि आपका रास्ता तनिक भी नहीं गड़बड़ायेगा और आप समाधि अवस्था में लय अवस्था को प्राप्त करते हुए अध्यात्म मार्ग में शीघ्रता से आगे बढ़ जायेंगे।

आध्यात्म की चढ़ाई का कोई मार्ग बना बनाया नहीं है। ये सब मानसिक तथा आध्यात्मिक स्थितियां हैं जिनके वर्णन के लिए हमारे शब्दकोष में उपयुक्त शब्दों का सर्वथा अभाव है। इन विषयों के बारे में सन्तों ने बहुत कुछ लिखा और कहा भी है, परन्तु वह सभी अपर्याप्त है। अत: सभी संत अन्त में यह कह कर चुप हो गये कि जो पहुंचेगा स्वयं ही इन स्थितियों का ज्ञान प्राप्त कर लेगा।

जिनसे शिक्षा का कार्य लेना होता है गुरुदेव उन्हें बारम्बार इस मार्ग पर चढ़ाते उतारते हैं और अभ्यासी को स्वयं के प्रयत्न से इन चढ़ाव-उतार का अभ्यास कराते हैं जिससे उसमें अपने साथ किसी कनिष्ठ अभ्यासी को आगे ले जाने की पर्यास क्षमता प्राप्त हो जाये। राह की सारी कठिनाईयों तथा अवरोधों की जानकारी प्राप्त हो जाने से राह सुगम हो जाती है। ●

7. सत्संग में आय-व्यय का हिसाब

आप भी नित्य यह देखते हैं कि सामूहिक पूजा के आयोजनों में - विशेषकर भण्डारों में - पूजा पंडाल, विश्राम का प्रबन्ध, भोजन आदि की व्यवस्था पर पर्याप्त धन व्यय होता है। इस व्यय के लिए सभी सत्संगी भ्राता अपनी सामर्थ्य (हैसियत) के अनुसार सहयोग देते हैं - परन्तु कुछ ऐसे होते हैं जो नहीं दे पाते हैं। परन्तु साधारणतः जितना व्यय हमारे इस सारे प्रबन्ध पर होता है उतना या न्यूनाधिक, प्रबन्धकर्ता को मिल जाता है।

इस प्रकार भेंट रूप में दिया हुआ रुपया प्रबन्धकर्ता के पास पहुंच जाता है। सभी भण्डारों में कुछ भगवान नारायण की ओर से ऐसी ऋद्धि (बरकत) भी होती है कि किसी प्रकार की कमी नहीं पड़ती और सभी आने वालों को पर्याप्त भोजन मिल जाता है। यह सब हम आप सदा ही देखते हैं।

साधारतया भी गुरु के स्थानों पर जो भी कुछ समय के लिए महानुभाव बाहर से आते हैं वे सहयोग रूप में कुछ भेंट देते ही हैं, जहां उपस्थिति अधिक होती है वहां सामान्यतः अधिक धन इकट्ठा हो जाता है और कभी-कभी यह राशि व्यय की हुई राशि से अधिक भी होती है। यह बची हुई राशि आगे के सामूहिक आयोजनों के प्रारम्भिक व्यय के लिए काम आती है।

सत्संग का कार्य जिन्हें सौंपा गया है वे अपने परिवार का निर्वाह स्वयं के परिश्रम (मेहनत) की कमाई से करते ही हैं और सत्संग के रुपये में से कुछ नहीं लेते। यह एक स्वस्थ परम्परा है। फिर भी अपवाद हैं, और जो इस रुपये को अपने और अपने परिवार पर व्यय करते हैं वे सही कार्य नहीं करते और देखा गया है कि आगे चल कर पैसे-पैसे को मोहताज हो जाते हैं। अतः हमें इसका सर्वथा ध्यान रखना चाहिए और रुपये का अलग खाता (Bank Account) रखना चाहिए। आय व व्यय की राशि का पूरा विवरण (हिसाब) रखना चाहिए, जिससे जो भी सत्संगी अथवा

अन्य व्यक्ति चाहे तो देख लें। कहीं-कहीं तो इस आय-व्यय को आडिट कराने की भी परम्परा है। मुझे पता है कि एक आचार्य ने कुछ भंडारों में भेंट लेना ही बन्द रखा और कहा कि जब इस काम के लिए जमा रुपया व्यय हो जायेगा तब और भेंट लेंगे। श्रीमान लालाजी साहब तो अक्सर भण्डारों के पश्चात् काफी उधार में आ जाते थे और धीरे-धीरे चुकाते रहते थे। पता चला है कि लालाजी साहब की ही कुछ शाखाओं में सत्संग में उपस्थिति की भी फीस ली जाती है। यह उचित नहीं है। कहीं शाखाओं में आचार्यों द्वारा भेंट भी ली जाती है उनमें से कुछ आचार्यों का तो ध्यान इसी तरफ रहता है जो इस सिलसिले की परम्परा के विपरीत है। अपने लिए पैसे की भेंट लेने से आध्यात्म प्रवाह रुक जाता है और पतन हो जाता है। कभी-कभी इस पैसे के साथ जुड़े हुए कुसंस्कार भी गले पड़ जाते हैं। अतः हम सब को इस विषय में सावधानी बरतनी चाहिए।

हमारे पूर्वज सदा कमी में रहे और कर्जदार ही रहे। साहित्य व पुस्तकें भी इस लिए होनी चाहिए कि उनकी वाणी फैले, परन्तु कमाई का साधन (जरिया) न बने। पुस्तकों की कीमत भी न्यूनतम होनी चाहिए और इतनी ही होनी चाहिए कि उन पर लगाया हुआ खर्चा निकल जाये। ●

8. हमारे अध्यात्म का सिलसिला

हमें यह आध्यात्म मार्ग श्रीमान परमसंत महात्मा रामचन्द्रजी फतेहगढ़ द्वारा प्राप्त हुआ है। आध्यात्म मार्ग के उद्गम स्थान भगवान नारायण स्वयं ही हैं। उनके अथवा उनके किसी रूप अथवा संदेशवाहक द्वारा मानव जाति को इसका संदेश तथा मार्गदर्शन भेजा जाता है। भगवान राम तथा भगवान कृष्ण के अवतार भी इसी क्रम में हुए हैं।

हमारे गुरु भगवान श्रीमान लालाजी महाराज को यह आध्यात्म मार्ग-मुस्लिम संप्रदाय के एक परमसंत से मिला। ये मुस्लिम संत उस परम्परा (नक्शबंदिया सिलसिले) से जुड़े हुए थे जिसका प्रारम्भ, इस्लाम धर्म के मूल प्रवर्तक हुजूर जनाब पैगम्बर मुहम्मद साहब (र.) द्वारा हुआ। आपने अपने आपको भगवान (या अल्लह) का संदेशवाहक के रूप में संसार के सम्मुख प्रस्तुत किया। इस्लाम धर्म का बाहरी रूप तो आप देखते ही हैं, इसका आंतरिक रूप दूसरा है जिसका आकार केवल आध्यात्मिक है। यह रूप भी गत शताब्दि तक कट्टरपन लिए हुए रहा परन्तु इस आध्यात्मिक वंश की ३२वीं पीढ़ी से ही इसके संतों को भगवान नारायण की इस आज्ञा का आभास होने लगा कि इस परम्परा को अन्य धर्मों के महानुभावों को भी हस्तांतरित किया जाए। अतः इन महापुरुष ने जिनका शुभ नाम हज़रत ज़नाब कुत्बे आलम अबुल हसन साहब (32) था अपने शिष्य परमसंत ज़नाब अहमद अली खाँ साहब (33) को आदेश दिया कि तुम्हारे पास एक हिन्दू लड़का आएगा, उसे यह आध्यात्म विद्या देना। इस पर परमसंत हज़रत ज़नाब मौलवी अहमद अली खाँ साहब ने अपने शिष्य परमसंत ज़नाब मौलवी फ़ज़ल अहमद खां साहब (34) को अपने गुरु भगवान की यह आज्ञा हस्तांतरित की और कहा "मेरे पास कोई ऐसा पुरुष नहीं आया हो सकता है। मेरे गुरुदेव ने मुझमें तुमको देखा हो। अब तुम्हारा फ़र्ज (कर्तव्य) है कि इस आज्ञा को याद रखो और अक्षरशः इसका पालन करो।"

इन संत ने अपने गुरु भगवान तथा दादा गुरु भगवान की इस आज्ञा का पालन किया और हमारे श्रीमान लालाजी महाराज (35) को यह आध्यात्म विद्या पूर्णरूप से हस्तांतरित करके दो पीढ़ी पहले की आज्ञा का पालन किया। इस प्रकार इस परम्परा की 35वीं पीढ़ी में हमारे श्रीमान लालाजी महाराज का आगमन हुआ।

हम अपने आपको इन संतों के द्वारा भगवान नारायण से जोड़ने के लिए इस परम्परा की वंशावलि (शजरा शरीफ़) पढ़ना नित्य कर्म का एक आवश्यक भाग समझते हैं। पहले यह शजरा अरबी भाषा में था। इसका अनुवाद हमारे दादा गुरु महाराज (अर्थात लालाजी महाराज के गुरुदेव) द्वारा साधारण उर्दू भाषा में करके हम सबको सदा के लिए इसे पढ़ते रहने की सुविधा प्रदान की।

दीक्षित हो जाने के उपरान्त इस वंशावलि का नित्य प्रति पाठ करना प्रत्येक अभ्यासी के लिए आवश्यक है। इससे वंश परम्परा से जुड़ाव पक्का (मज़बूत) होता है और पूर्व गुरुजनों की कृपा मिलती है। वे (गुरुजन) दैहिक, दैविक व भौतिक तापों से हमारी रक्षा करते हैं। शजरे की एक-एक कड़ी (शैर) एक-एक मंत्र है जो सांसारिक व आध्यात्मिक सफलता के लिए बहुत सहायक होता है।

हमें आध्यात्म की सारी शक्ति अपने गुरु द्वारा ही मिलती है। उनको (अर्थात हमारे गुरुदेव को) उनके सद्गुरुदेव के द्वारा इसी प्रकार सारी परम्परा अवतार श्रेष्ठ तथा उनके ऊपर भगवान से हमें जोड़ देती है। जो इस प्रकार जुड़ते नहीं वे अधूरे रह जाते हैं और आध्यात्म की नीचे की सीढ़ियों में अटके रह जाते हैं। इनका सारा परिश्रम इन्हें जहां तक ले जा सकता है वहां भी नहीं ले जा पाता। इसी कारण से दीक्षा (बैत) होना आवश्यक है।

इस परम्परा की पीढ़ी 17 में जो संत सद्गुरु हुए उनका शुभनाम हज़रत ज़नाब वहाउद्दीन साहब था। आप जब अपने गुरुदेव के पास रह रहे थे - उनके गुरुदेव को कुछ कार्यवश बाहर जाना पड़ा। उनके यहाँ घड़े बनाने का व्यवसाय होता था और वे अलाव में लगाने के पहले हर घड़े पर 'अल्लाह' शब्द अंकित करते थे जिसे वे नक्शा कहते थे। अपने शिष्यों को घड़े अलाव पर लगाने की आज्ञा के साथ यह आज्ञा भी थी कि हर घड़े पर नक्श अल्लाह बनाना है। परन्तु जब हज़रत

ज़नाब वहाउद्दीन साहब ने आलव लगाया तो नक्श लगाना भूल गये। बाद में याद भी आया मगर उस समय तक अलाव चढ़ चुका था और घड़े पर नक्श लगाना संभव न था। जब अलाव खोला गया और हर घड़े पर नक्श अल्लाह पाया गया। यह देखकर आपके गुरुदेव ने आपका नाम ही 'नक्श बन्द' रख दिया, इस प्रकार सिलसिले का नाम 'नक्शबंदिया' पड़ा।

उनके बाद 25वीं पीढ़ी में जो बुजुर्ग हुए उनका नाम हज़रत ज़नाब शेख अहमद फ़ारुखी था, परन्तु वे हजरत मुजद्दद साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके नाम से सिलसिले मुजद्दिदिया शब्द बढ़ा। इनके बाद पीढ़ी के चौथे बुजुर्ग हजरत जनाब जानजाना साहब थे वे 'मज़हर' के नाम से शायरी करते थे। इस प्रकार सिलसिले के नाम में मज़हरिया और जुड़ गया और इस प्रकार सिलसिले का पूरा नाम "नक्शबंदिया मुज़द्दिदिया मज़हरिया" हुआ। इन तीनों संतों के नाम (उपनाम या तख़ल्लुस) हमारे सिलसिले में जुड़ने इसलिए भी आवश्यक हो गए कि इन्हीं बुजुर्गान के साथ इनके गुरु भ्राताओं के सिलसिले भी चले। अतः पहचान बनाना आवश्यक था।

भली भांति समझ लीजिए कि यह जाति-पांति, ऊंच-नीच तो इस संसार में बहुत है पर भगवान नारायण के यहां कुछ नहीं है। जो इस परम्परा को मुस्लिम महानुभावों की समझ कर घृणा करते हैं अथवा इससे बचना चाहते हैं वे संकुचित विचारों के होकर अपनी भारी हानि कर रहे हैं और जो लाभ उन्हें मिल सकते हैं उनसे अपने आपको वंचित रख रहे हैं। अतः यह भावना सर्वथा त्याज्य है। मानव जाति एक है और इसमें भगवान के यहां कोई भेदभाव नहीं है। हमें भेदभाव करके अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी क्यों मारना चाहिए ? ●

9. दीक्षा - बैअत

दीक्षा की रस्म भारत में ही नहीं - और देशों में भी प्रायः आध्यात्म शिक्षा का एक आवश्यक अंग रही है । हमारे श्रीमान लालाजी महाराज द्वारा प्रचारित अभ्यास में भी इसे आवश्यक बतलाया गया है। उनके जितने भी वरिष्ठ शिष्य हुए हैं और जिनके कार्य का संसार के अनेक भागों में प्रचार-प्रसार हुआ वे सभी श्रीमान लालाजी महाराज द्वारा दीक्षित किए गए थे। बाद में उनके शिष्यों ने भी इस परम्परा को प्रचलित (कायम) रखा । देखने में आता है कि यह दीक्षा की परम्परा सभी धर्मावलम्बियों में पाई जाती है।

दीक्षा में गुरु अपने शिष्य को अपने गुरुदेव के माध्यम से परम्परा के सारे गुरुओं से जोड़ देते हैं और एक प्रकार से शिष्य को उन महान आत्माओं को सौंप देते हैं और फिर उनके (उन गुरुओं के) सेवक की भांति शिष्य की सदा शिक्षा देते और संभाल करते रहते हैं।

'दीक्षा देना' को उर्दू भाषा में 'बैअत करना' कहते हैं। बैअत करना अपने आपको 'बेच देने' को कहते हैं। पुराने जमाने में 'गुलामों' के नाम से मानवों को बेचे जाने का इतिहास भी कई देशों में मिलता है । "बैअत" किया हुआ व्यक्ति गुलाम (दास) की स्थिति में होता है । उसे अपने ऊपर कोई अधिकार नहीं होता । सारे अधिकार उसके स्वामी के होते हैं। आध्यात्म में दीक्षित व्यक्ति अपने आपको दीक्षा गुरु को पूर्णरूप से समर्पित करता है जिससे उसके ऊपर गुरु का अधिकार मान लिया जाता है। 'दीक्षा' का शाब्दिक अर्थ है कि 'दि' धातु अर्थात देना है और 'क्ष' धातु अर्थात क्षय करना है अर्थात दीक्षा के समय शिष्य स्वयं को 'दे' देता है और गुरु शिष्य के संस्कारों और कलुषताओं को 'क्षय' या दग्ध कर देता है । अधिकतर आध्यात्मिक उन्नति (तरक्की) का बड़ा सोपान दीक्षा के दिन ही तय हो जाता है चाहे उस समय उसका आभास न हो । गुरुदेव यदा-कदा प्रसन्न होकर दीक्षा के

दिन ही आध्यात्म की अंतिम मंजिलों तक पहुंचा देते हैं। आज का शिक्षित वर्ग इसे अनुचित ठहरा सकता है लेकिन आध्यात्म मार्ग में यह अपरिहार्य है।

श्रीमान लालाजी महाराज ने तो इस रीति को वैसा ही रखा जैसा कि पूर्व के गुरुओं द्वारा प्रचलित था, परन्तु उनके कुछ वरिष्ठ शिष्यों ने समय के परिवर्तन का ध्यान रखते हुए इसमें संशोधन किए और कहीं-कहीं तो यह परम्परा समाप्त ही कर दी गई। दीक्षा के बाद शिष्य गुरु परम्परा से जुड़ जाता है और इसके बाद उसके लिए वंशावलि (शिजरा शरीफ) का पाठ करना आवश्यक है।

सच तो यह है कि यह विद्या सीमित तथा उपयुक्त संस्कार वालों के लिए ही देने योग्य है। इसका सार्वजनिक रूप से प्रचार नहीं होना चाहिए। जहाँ सैकड़ों-हजारों की संख्या में सत्संगी लोग देखने में आए, वहाँ उनमें से थोड़े से (इने-गिने) व्यक्ति ही अधिकारी दिखाई पड़े। अधिकतर देखा-देखी आए हुए अथवा परीक्षा लेने अथवा अन्य सांसारिक प्रलोभनों को पूरा करने आए ही व्यक्ति मिलते हैं। उचित प्रकार के अभ्यासी बहुत कम मिलते हैं। कम से कम इन अधिकारी लोगों को तो दीक्षा मिल जानी चाहिए जिससे इनका काम पूरा हो सके और अन्य महानुभावों की भांति लटकते न रह जाएं।

दीक्षा के सयम गुरु शिष्य को सामने बिठलाकर उसके ऊपर के चक्रों को (त्रिकुटी या दशम द्वार तक) अपनी शक्ति के प्रयोग से खोल देता है और अपने गुरु के हाथ में अपने शिष्य का हाथ दे देता है। दीक्षा के समय थोड़ा मिष्ठान बीच में रखते हैं जिसे दीक्षा के समय उपस्थित सज्जनों में बांट दिया जाता है। दीक्षा के समय उस स्थान पर गुरु व दीक्षा लेने वाला व्यक्ति ही उस समय उपस्थित होते हैं, परन्तु गुरु पदवी प्राप्त अन्य व्यक्ति भी वहां उपस्थित रह सकते हैं। इस समय दीक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति को मुख से बोलकर तथा मन से यह कहना आवश्यक होता है कि "आज दिनांक... को मैंने आपसे दीक्षा ली और मैंने अपना जीवन ईश्वर के प्रेम के लिए समर्पण किया। अब मैं सदा के लिए आपका हो गया। भगवान मुझे इस कार्य में मेरी सहायता करें।" यह सब शिष्य से तीन बार कहला लेते हैं फिर ध्यान में बिठला कर उसके चक्रों को जैसा ऊपर बताया है, खोल देते हैं। कालांतर में शिष्य धीरे-धीरे स्वयं प्रगति करता हुआ गुरु के संरक्षण में उन्हीं की सहायता से, स्वयं के

अभ्यास और प्रयत्न द्वारा प्राप्त चढ़ाई करके ईश्वर की राह में पूर्णत्व प्राप्त करता है।

नीचे के चक्रों को सहस्रार तक पार करने पर अभ्यासी के लिए दीक्षा प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। फिर गुरु उसे अपनी शक्ति से त्रिकुटी (दशम द्वार) तक चढ़ा देते हैं फिर उसको स्वयं के अभ्यास द्वारा प्राप्त की हुई स्थिति पर लौटाकर छोड़ देते हैं। बाद में शिष्य गुरु की सहायता से त्रिकुटि को भी पार करके सतलोक में स्थित हो जाता है। संक्षेप में इससे अधिक कुछ नहीं कहा या लिखा जा सकता है। पाठक हमें क्षमा करें।

दीक्षा उन्हीं अभ्यासियों को दी जाती है जिन पर यह विश्वास हो जाता है कि उन्होंने सहस्रार तक चढ़ाई कर ली है। परन्तु दीक्षा इसके पहले भी दी जा सकती है, ऐसा उन शिष्यों के लिए होता है जो संस्कारी होते हैं। ऐसे शिष्य एकदम प्रगति कर जाते हैं। हमारे पूर्वगुरुओं ने दीक्षित तथा अ-दीक्षित दोनों शिष्यों में कभी भेद नहीं किया। दोनों को समान रूप से ध्यान कराया (तवज्जह दी) और मार्ग पर चलाया। अन्तर (फ़र्क) बस इतना होता था कि दीक्षित शिष्य की गलती आसानी से माफ नहीं होती जबकि बिना दीक्षा लिए हुए शिष्य के लिए कोई बंधन नहीं होता था। हमारे पूर्व गुरु यह भी कहते थे कि जब तक आत्म साक्षात्कार न हो जाय कोई ग्रन्थ न देखें, नहीं तो ग्रंथों में वर्णित नकली हालत आ जायेगी और भ्रम उत्पन्न होगा।

हमारे लालाजी महाराज के शिष्यों में कुछ ने 'दीक्षा' को 'नाम' देना कहा है। कुछ भी कहें, मतलब समर्पण करना और उसे स्वीकार करना ही मुख्य है। कुछ स्थानों में ऐसी भी मान्यता है कि सामूहिक ध्यान करा दिया गया और बस सबकी दीक्षा हो गई। हमारे एक भाई साहब ने यह रस्म रखी कि तीन सत्संग (सिटिंग) आचार्य द्वारा दिए जाने पर दीक्षा स्वतः हो जाती है। अब हमारे पाठकगण स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं कि कौन से नियम कहां तक उचित हैं। श्रीमान लालाजी महाराज का जो नियम था, मैंने लिख दिया है। उनके वरिष्ठ शिष्यों ने स्थान व समय की आवश्यकता को समझकर कुछ फेर-बदल किए लगते हैं, जिनके विषय में मुझे कुछ भी कहना अथवा लिखना शोभा नहीं देता क्योंकि मैं इन सबसे छोटा हूँ और सदा ही सबके आशीर्वाद की आशा और कामना करता हूँ। ●

10. दो प्रार्थनाएँ

हमारे पाठकों ने यह भलीभाँति समझ लिया होगा कि अध्यात्म की यह परम्परा (सिलसिला) हमें इस्लाम धर्म के परम सन्तों से मिली है। इस्लाम धर्म अरब देश में जन्मा और आरम्भ में वही फैला। बाद में लगभग दसवीं शताब्दी में भारत आया। आपने यह भी पढ़ा होगा कि अध्यात्म का यह भाग तथाकथित इस्लाम धर्म से भिन्न रहा है। इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ इसका भी प्रचार हुआ लेकिन बहुत सीमित रहा और मुस्लिम समाज के बहुत थोड़े महानुभावों तक ही सीमित रहा। इसका स्वरूप धर्म के बाह्य रूप से बहुत भिन्न रहा, परन्तु यह उन्हीं कट्टर इस्लाम धर्मावलंबियों के हाथ में रहा। अतः इसमें भी कट्टरता का अंश. आए बिना नहीं रहा। और विशेष (भगवान की) आज्ञानुसार ही यह भाग अन्य धर्मावलंबियों को हस्तांतरित तो बहुत-बहुत हुआ जहाँ तक कि इस्लाम धर्म के मानने वाले संसार की जनगणना का एक बड़ा भाग लगभग एक तिहाई बन गए। फिर भी उस आध्यात्मिक भाग का प्रचार अत्यन्त सीमित रहा। विशेष आज्ञा होने पर ही हमारे श्रीमान लाला जी महाराज ही इसके प्रथम गृहीता हुए। जो इस्लाम (मुसलमान) नहीं थे। आपने यह भी पढ़ा कि इनके अनेक मंत्र अरबी भाषा में ही है जिनका हमने अनुसरण किया है।

श्रीमान दादा गुरु महाराज (परमसन्त महात्मा हज़रत जनाब मौलवी फ़ज़ल अहमद खाँ साहब) द्वारा दो प्रार्थनाएँ भी हमें मिली जो कि अरबी में थी। परन्तु आपने स्वयं ही इनका अनुवाद सरल उर्दू भाषा में किया और इन्हें पढ़ने का अनुमोदन किया। दोनों प्रार्थनाएँ इस प्रकार हैं-

1. ऐ मेरे अल्लाह पाक और बरतर अल्लाह। मैं तेरा नाचीज़ बन्दा हूँ और पुरमुआसी और पुर खता हूँ। तू महज़ अपने फ़ज़्लो करम व बुज़ुर्गान तरीका सिलसिला आलिया नक्शबंदिया मुज़द्दिया, मज़हरिया, फज़्लिया, रामचंद्रिया सराँ

आँ अज़ीज़ के तुफैल में मेरे सब गुनाह और खताए और ये सब लग़ज़िके जिनको कि मैं जानता और नहीं जानता हूँ मुआफ फरमा और मुझको उस सराते मुस्तकीम पर जिस पर तेरे नेक बन्दे चले हैं और ये जिन रास्तों के चलने वालों पर तेरे अफ़ज़ाल और नियामात का निजूर होता हैं चला। आमीन। या रब्बुल आलमीन॥

2. इलाही तू मेरा मालिक है। कोई लायक बन्दगी के नहीं सिवाय तेरे। तूने मुझको पैदा किया और मैं तेरा बन्दा हूँ और तेरे कौल और वादे पर हूँ। अपने मक्दूर के माफ़िक मैं तेरी पनाह माँगता हूँ। अपने कर्तव्य की बुराई से और गुनाहों का इकरार करता हूँ सो मुझको बख़्श दे। और कोई गुनाहों को बख़्श नहीं सकता सिवाय अल्लाह के यानी तेरे। ●

11. हमारा लक्ष्य और उसमें सदगुरु की भूमिका

हमारे दादागुरु महाराज परमसंत सद्गुरु जनाब मौलवी फज़्ल अहमद ख़ाँ साहब का फरमाना था :-

अव्वले माँ आखिरी हर मुन्तहीस्त

आखिरे मां जेबे तमन्ना तिहीस्त

अर्थात् हमारे (नक्श बंदिया) सिलसिले का प्रारम्भ वहां से है जहां औरों (अन्य सिलसिलों व संप्रदायों) का अंत होता है और हमारे सिलसिले का अंत वहां होता है, जहां तमन्नाओं, (इच्छाओं व कामनाओं) की जेबें खाली हो जाती हैं अर्थात उनका अंत हो जाता है। इस फारसी पद को थोड़ा विस्तार से समझलें। अष्टांग योग में अंतिम चार चरणों में प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है। समाधि का वर्णन हमें बहुत अधिक नहीं मिलता। ऐसा लगता है कि जब साधक सहस्र दल कमल पर पहुंचता है तो वहाँ बहुत प्रकाश पाता है, वही स्थान को अंतिम समझ कर यहीं अंत कर दिया गया और आगे बढ़ना आवश्यक नहीं समझा गया। हमारे बुजुर्गों के अनुसार सचखण्ड तक और इसके भी ऊपर बहुत स्थान हैं। अतः हमारे दादागुरु के अनुसार समाधि की अवस्था प्रारम्भिक ही है जिसे आपने 'अव्वले माँ' कहा और अंत का विवरण जहाँ इच्छाओं व तमन्नाओं की समाप्ति हो जाती है अर्थात फ़ना होकर ब़का और फिर ब़का उल ब़का हो जाता है, कहा गया है।

हमारा लक्ष्य क्या है इसे बताने के लिए श्रीमान लालाजी महाराज का कथन है "कमाले इंसानी इसी में है कि फ़ना फ़िल्लाह की सरहद में पहुंचकर ब़का बिल्लाह में बाकी रहे।" अर्थात् मानव जीवन की उच्चतम उपलब्धि इसी में है, कि ईश्वर में लय हो जाए और उस अवस्था में अपनी स्थिति कर ले अर्थात वहीं ठहर

जावे । "यही मनुष्य मात्र का कमाल है और आदर्श है ।" अर्थात यही उच्चतम उपलब्धि है । आगे कहा है कि "इसका पहला दर्जा बेखुदी है (अर्थात असंप्रज्ञात समाधि होना या चेतना का पूर्ण लय हो जाना है) जो मृत्यु के जैसा ही है, पर मृत्यु में हुज़ूरी (सन्निकटता) नहीं है पर इसमें हैं ।"

श्रीमान लालाजी महाराज के अनुसार फ़ना या लय अवस्था प्राप्त करना कमाल है अर्थात सबसे बड़ी उपलब्धि है पर उसके आगे की महान अवस्थाओं ब़का और ब़का उल ब़का (अर्थात तुर्या व तुर्यातीत) को प्राप्त करना कोई कमाल नहीं है क्योंकि वे अवस्थायें स्वतः ही हरि आधीनता से प्राप्त होती हैं । श्रीमान चच्चाजी महाराज कहते थे पहले गुरु में फ़ना हो फिर ब़का (लयता में चैतन्यपूर्वक स्थित होना) फिर ईश्वर फ़ना, और उससे आगे ब़का-उल-ब़का, अर्थात ईश्वर में लयता प्राप्त कर उसमें पूरे रूप से स्थित होकर फिर दुनिया, गुरु व ईश्वर तीनों से गुम (गायब) हो जा अर्थात तीनों से किनारे हो जाओ, सबसे बेनियाज (पृथक) हो जाओ, स्वयं में मगन हो जाओ । लिखित में इतना ही बताया जा सकता है ।

दोनों जहाँ को आशिक तेरे, तुझ पर वारे बैठे हैं ।
मुल्क ब़का में डेरे डाले, सबसे किनारे बैठे हैं ।।

संत साहित्य के अनुसार आज्ञा चक्र (अर्थात नफ़्स के मुकाम) से ऊपर सहस्रार (आलमे ज़बरूती), त्रिकुटी (आलमे मुस्लसी), शून्य महाशून्य (आलमे लाहूती), भंवर गुफा (आलमे इल अलहूती) तथा सचखंड (आलमे हूत) को पार करके जब मानवात्मा सतलोक में पहुंचती है तभी यह लय अवस्था प्राप्त होती है ।

फिर लय अवस्था के बाद भी अंत नहीं है । फिर अलख, अगम व अकह, और अनामी स्थान, जो स्वतः प्राप्त होते हैं, उन्हें पार करके तीन गुप्त स्थान, जिनका भेद संतों ने गुप्त रखा है, और कहा है कि जो वहां पहुंचेगा स्वयं जान लेगा (ये तीनों स्थान) गुरु शक्ति तथा कृपा से स्वतः पार हो जाते हैं । अगर जीवन रहते ये पार नहीं हुए तो मृत्यु उपरान्त जीवात्मा गुरु शक्ति की सहायता से इन्हें पार कर लेती है । परन्तु जीवन में जल्दी पार हो सकते है मृत्यु उपरांत देर और कभी-कभी बहुत देर लगा जाती है ।

वैसे भी अंतिम स्थान (तीन गुप्त स्थानों के उपरान्त) शरीर रहते नहीं जाया जा सकता। उसके लिए शरीर रूपी घड़ा फूटना आवश्यक है। कबीर साहब कहते हैं-

या मरने से जग डरे, मोहि अति आनंद

कब मरिहों कब पाइहों, पूरण परमानंद

सद्गुरु की पकड़ बड़ी मजबूत होती है। एक बार समर्पित होने के बाद, व्यक्ति दुनिया में लिप्त नहीं होता, परन्तु उसके दुनिया के सब कार्य सम्पूर्ण होते रहते हैं। सद्गुरु उसे अन्तिम स्थान तक जब तक नहीं ले जाते अर्थात ईश्वर में पूर्णरूपेण लय कर स्थित नहीं कर देते... या फ़ना करके ब़का नहीं करा देते चैन नहीं लेते हैं। ईश्वर में स्थित कर सद्गुरु (पुश्ते पनाही या पीठ पीछे) हो जाता है अर्थात् एक प्रकार से सम्बन्ध ढीला कर देता है क्योंकि उसका कर्तव्य पूरा हो चुका होता है।

तो साहब, गुरु का यह दर्जा है और समर्थ गुरु की यह महती कृपा है। ऐसे गुरु को इसका बदला हम आप क्या दे सकते हैं?

"राम नाम के पंटतरे, देवै को कछु नाहिं

का दे गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माहिं।" ●

हमारे प्रकाशन

1. साक्षात्कार का रहस्य — डॉ. हरनारायण सक्सैना, जयपुर
2. जीवनी (THE LIFE) — डॉ. हरनारायण सक्सैना, जयपुर
3. यादें (तृतीय संस्करण) — डॉ. हरनारायण सक्सैना, जयपुर
4. आध्यात्मिक संकलन (दो भाग) — डॉ. हरनारायण सक्सैना, जयपुर
5. जीवन वृतान्त - नक्शबंदिया सिलसिले के बुजुर्ग व उनकी समाधियां — डॉ. हरनारायण सक्सैना, जयपुर
6. स्वस्थ सुखी दिव्य जीवन — डॉ. हरनारायण सक्सैना, जयपुर

English

1. THE SECRET OF REALIZATION — Dr. H.N.Saxena, Jaipur
2. SANT-MAT DARSHAN — Dr. H.N.Saxena, Jaipur
3. THE LIFE — Dr. H.N.Saxena, Jaipur

(Revision 18j13)